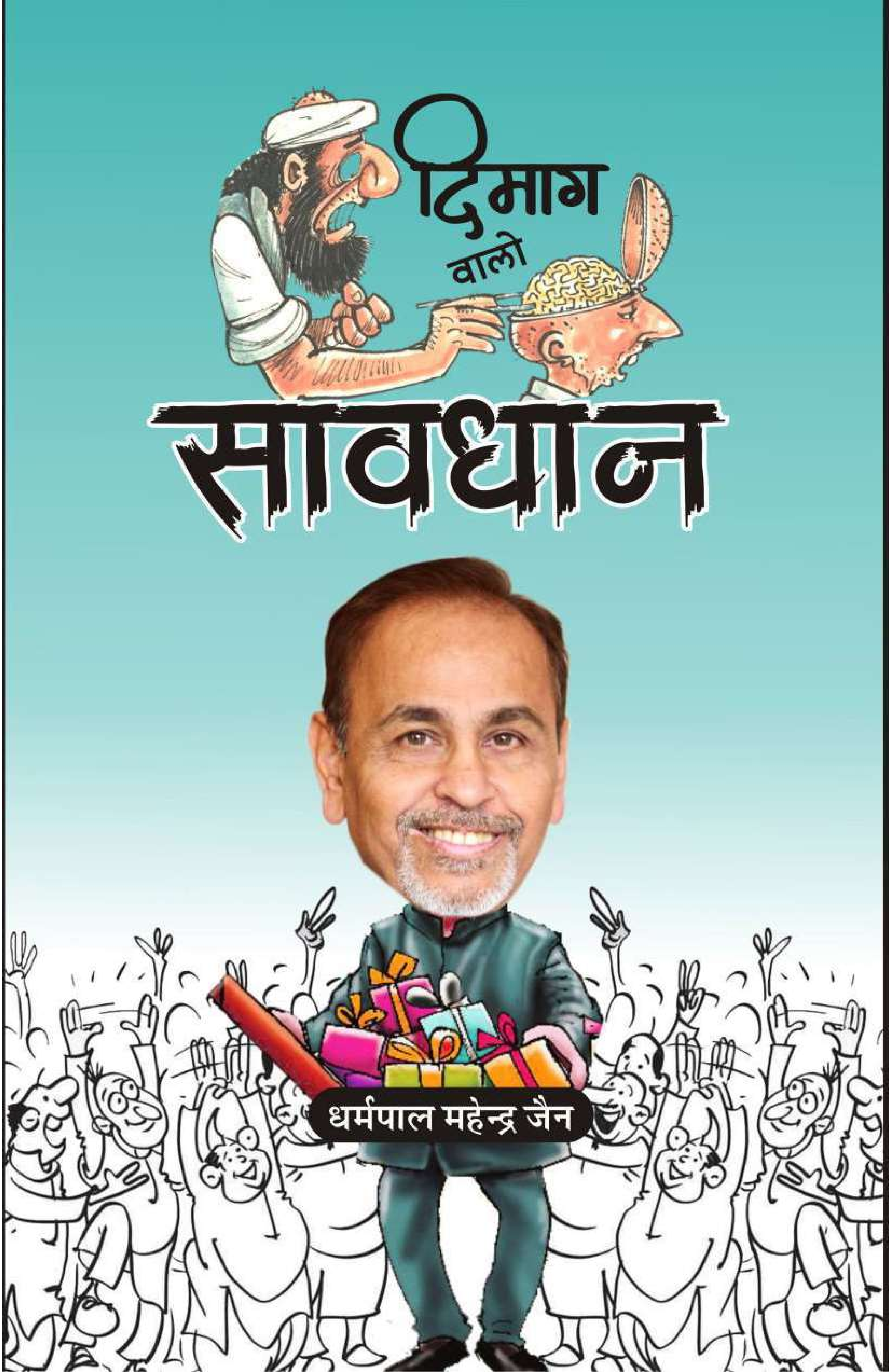


दिमाग
वालो
सावधान
धर्मपाल महेन्द्र जैन

दिमाग वालो सावधान

(व्यंग्य संग्रह)

दिमाग वालो सावधान



(व्यंग्य संग्रह)



धर्मपाल महेन्द्र जैन

संस्करण : प्रथम 2020

प्रकाशक : किताबगंज प्रकाशन

ICS (रेमण्ड शोरूम), राधाकृष्ण मार्केट
SBI बैंक के पास, गंगापुर सिटी–322201
जिला–सवाई माधोपुर (राजस्थान) INDIA

kitabganj@gmail.com

facebook.com/kitabganjbooks

www.kitabganj.com

+91-8750-660-105

संपादन : डॉ. प्रमोद सागर
आवरण : तथास्तु
डिजाईनर : Vakeel Zee
मुद्रक : Thomson Press (INDIA) Limited
ऑनलाईन : www.amazon.in

ISBN : 978-93-89352-76-4 (e-बुक)
मूल्य : ₹ 50/- (भारत में) $ 0.95 (U.S.A.) $ 0.99 (CAN.)

ISBN : 978-93-89352-63-4 (पेपरबैक)
मूल्य : ₹ 250/- (भारत में) $ 7.95 (U.S.A.) $ 9.99 (CAN.)
Price : $ 10.95 (AUS.) £ 6.50 (U.K.) € 6.95 (EURO)

ISBN : 978-93-89352-64-1 (हार्डकवर)
मूल्य : ₹ 500/- (भारत में) $ 14.95 (U.S.A.) $ 18.99 (CAN.)
Price : $ 20.95 (AUS.) £ 11.50 (U.K.) € 12.95 (EURO)

दिमाग वालो सावधान द्वारा धर्मपाल महेंद्र जैन
Dimag Walo Savdhan : Satirical Essays by Dharmpal Mahendra Jain

अपने पासवर्ड

हंसा दीप

को...

अनुक्रम

दिमाग वालो सावधान

आदमी मजबूत मगर मजबूर प्राणी है। कई नमूने हैं उसके। कुछ दिमाग वाले, कुछ बिना दिमाग के, कुछ पौन दिमाग के कुछ पाव दिमाग के। बिना दिमाग के लोग शुद्ध आदमी होते हैं, वे दूसरों का दिमाग खाते हैं और धीरे-धीरे खाली कर देते हैं। फिर वे नया दिमाग पकड़ते हैं, दीमक जैसे चिपकते हैं और उसको भी खाली कर देते हैं। यह क्रिया आदमी को जानवर से भिन्न बनाती है। आप आदमी बनने की प्रक्रिया देखिए, बच्चा पैदा हुआ, उसका दिमाग माँ-बाप ने खाया, रिश्तेदारों को खिलाया, स्कूल मास्टरों ने दावतें उड़ाईं, खुड़चन बची, वह कॉलेज में साफ हो गई। दिमाग की हंडी एकदम क्लीन, बजा के देखी, बजी। तब विश्वविद्यालयों ने डिग्री दे दी, गुरुओं ने कहा वत्स, तुम पूर्ण आदमी हुए, अब दिमाग कबाड़ो और खाओ।

ऐसा ही एक पूर्ण आदमी था, दिमागजीवी, लोगों का दिमाग खा कर जीने वाला। अमेरिका में रहता था। एक दिन वह निठल्ला बगीचे में बैठा था, उसकी दिमागी हंडी पर सेब गिरा। उसकी हंडी खाली थी, इसलिए टन्न बजी। वह चिंतन करने लगा, सेब नीचे क्यों आया, ऊपर क्यों नहीं गया? अमेरिकनों के हिसाब से हर चीज ऊपर जानी चाहिए। मुफ्त का सेब था, इसलिए उसने तत्काल सेब खा लिया और बड़ा वैज्ञानिक बन गया। तबसे बड़े-बूढ़े नसीहत देते हैं महान बनने के लिए साग-रोटी के अलावा भी खाना जरूरी है, सेब महँगा है, दिमाग सस्ता है। महँगा छोड़ो, सस्ता खाओ, दिमाग खाओ।

आप जानते ही हैं, मूलतः दिमाग गोबरनुमा 'सेमी लिक्विड' होता है। न ठोस, न द्रव, अति स्वादिष्ट, रबड़ी जैसा, चाटो तो चटखारे लेते रहो। शुरू में

दिमाग चाटना रासायनिक क्रिया होती है। कोई चाटक दिमाग चाटना शुरू करता है तो वह उसे खाली कर के ही साँस लेता है। दिमागी तरल पदार्थ के लुप्त हो जाने से दिमाग खाली और बट्टर हो जाता है। इसमें दिमाग का मूल स्वरूप ही बदल जाता है, रासायनिक क्रिया पूर्ण हो जाती है।

चाटक फिर भी आते रहते हैं पर अब भौतिक क्रिया ही हो सकती है। दिमाग खाली है, वह न गर्म होता है न ठंडा, निर्विकार रहता है। जितना चाटना है चाटो, शौक से चाटो। अभी-अभी जो दिमाग बट्टर बना था, वह प्रतिक्रियावादी बन जाता है। दूसरों का दिमाग कबाड़ता है और चाट-चाट कर उसे महान बना देता है। अब आप समझ जाएँगे कि भारत जगत गुरू क्यों है। यहाँ गुरू ही गुरू रहते हैं, पूरे सवा सौ करोड़ गुरू। और तो और वे प्रवासी गुरू बन कर दुनिया भर में फैल गए हैं। अपने खानदानी कौशल से उन्होंने दिमाग चाटन को विश्व व्यापी व्यापार बना दिया है। अब उसे कहीं भी करो, कभी भी करो, बिना लायसेंस के। न टैक्स के लफड़े न हिसाब की झंझट। ऐसा बेधड़क मुक्त व्यापार करना हमारी विशेषज्ञता है।

दिमाग चाटन थोक एवं खेरची दोनों रूपों में लोकप्रिय है। कोई कुर्सीला नेता आए तो लोग भेड़ जैसे दौड़ते हैं, मैदान भीड़ मयी हो जाता है, ठसाठस। स्थानीय चाटक आते हैं और अकथित दो शब्दों (गधा है) में चाटक नेता का परिचय देते हैं। उस नेता को उपस्थित भीड़ का दिमाग चाटने आमंत्रित करते हैं। भीड़ स्वीकृति में तालियाँ बजाती है, मानो कह रही है, आ जाओ, हमें चाट कर उपकृत कर दो।

तोंद सम्हाले राजनेता मंच पर आते हैं, माइक बजा कर कहते हैं- भाइयों और बहनों! लोग आत्म समर्पित हो दिमाग चटवाने तैयार हो जाते हैं। उनका आग्रह होता है तो खड़े लोग बैठ जाते हैं, फिर बैठे-बैठे सो जाते हैं। इतना विशाल प्रजातंत्र इसलिए खर्राटे भरते हुए चल रहा है।

दस-बीस हजार लोगों की भाड़े की भीड़ मे, दस-बीस दिमाग होते हैं, शेष सादी वर्दी में पुलिस विभाग होता है। श्रोता जानते हैं कि उनका दिमाग ठोस है, क्या बिगड़ता है। वे तो देश के लिए जान दे सकते हैं, दिमाग क्या चीज है। राजनेता रूपी थोक चाटक अनुभवी है, उसका उद्देश्य होता है पब्लिक का दिमाग

और सरकार का खजाना चाटना। वह इस प्रत्याशा में चटखारे लेता है, ठिठोली करता है, पब्लिक तालियाँ ठोकती है, वोट देने की रस्म निभाती है और जनतंत्र को जिंदा रखती है। अखबार विज्ञापन के अनुपात में चाटक का फोटो और ख़बर छापते हुए लिखते हैं चाटक ने जन समुदाय को बांधे रखा और चाटा, उनका संवाददाता इसका प्रत्यक्षदर्शी रहा।

पंडित जी परंपरागत चाटक हैं, वे चाटने की दक्षिणा लेते हैं। इस युग में चाटन भी प्रयोगवादी है, कुछ दशकों में समतावादी चाटन विधा बेहद पनपी है। समतावादी चाटन में सब क्रमशः चाटते है। तुम हमें चाटो, हम तुम्हें चाटें। बहसों, गोष्ठियों, संस्थाओं में यह चाटा-चाटी क्रमशः चलती रहती है।

आप भी कितने महान हैं। एक आदमी स्वेच्छा से आपका दिमाग चाटता है। आप मन में कुड़कते हैं, पर क्षमाभाव धारण किए चटवाते रहते हैं। चाटक अपना मुँह आपके मुँह के इतना समीप लाता है गोया आप कान से नहीं मुँह से सुनते हों। चाटक यह मानकर चिल्लाता है जैसे कि आप भी उतने ही बहरे हों। वह बोलता ही रहता है, जैसे कि आप गूंगे हों, वह चाटता रहता है जैसे कि आपके पास दिमाग हो।

रवीन्द्रनाथ की तरह मैं भी कहूँगा, 'एकला चाटो रे'। अकेले चाटक हर कहीं मिल जाएँगे, बागों में बाजार में, टाकीज में, जेल में, प्लेन में, रेल में। एक ढूँढोगे तो हजार मिलेंगे। नसरगंडों की तरह मिलेंगे, और मिलेंगे तो चाटेंगे। चाटक होगा पहला कवि, इसलिए हर कवि मान्यता प्राप्त चाटक है। कवि रोब से चाटता है, सरकार मानपत्र देती है, कहती है प्रशंसा योग्य चाटा, एकेडमिक चाटा। लोग जानते हैं, कवि चाटेंगे फिर भी उसे बुलाएँगे, छेड़ेंगे आ कवि, मुझे चाट, शास्त्र संगत चाट। कवि की सुप्त प्रतिभा जागेगी, और वह जागेगा तो चाटेगा।

चाटन महान कला है, चाटन अद्‌भूत विज्ञान है, चाटक बेचारा बोल कर कितना चाटता। अब कोई गा कर चाटता है, लिख कर चाटता है, वाट्सऐप पर चाटता है, फेसबुक पर चाटता है। पाठकों क्षमा, आपका दिमाग मैंने भी चाटा, था तो चाटा, नहीं था तो भी चाटा पर जी भर कर चाटा।

सबकी हो सबरीमाला

केरल भारत का सर्वाधिक साक्षर राज्य है। पढ़े-लिखे समझदार लोग, समाज और जनतंत्र का गौरव होते हैं पर सबरीमाला में जो हुआ उससे शिक्षित लोगों की अकल पर संदेह होने लगा। आस्था कलंकित हो गई, कुरीतियों की जीत हो गई, भगवान ठगे-से देखते रह गए और न्याय हार गया। महिलायें मंदिर में प्रवेश नहीं कर पाईं और पतित पावन सीताराम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। इच्छा हुई प्रभु से पूछूँ, नाथ कैसी है आपकी लीला। जो महिलायें आपके दर्शन करने आ रही हैं पुलिस उन्हें भगा रही है, पुरूष उन्हें डंडों से ठेल रहे हैं। नाथ, आप अपनी महिला भक्तों को मंदिर में नहीं आने दे रहे। परंपरा के नाम पर धर्म फिर पाखंड बन रहा है।

प्रभु से बात करने की मेरी तीव्र इच्छा थी पर उनसे संपर्क कैसे करूँ? साधु-संतों और जगद्‌गुरुओं से सुना था कि वे लोग ध्यान लगा कर या राख मल कर प्रभु से मिल आते थे। वे लोग कथित बाल-ब्रह्मचारी और मैं ठहरा बाल-अनाड़ी। प्रभु को हाथ जोड़ता इतनी देर में मेरा मन सारी दुनिया भटक आता था। प्रभु से बात करने के लिए जो बुनियादी तहजीब चाहिए वह मुझमें नहीं थी। मैंने ग्यारह रुपये दो बार गिने और पंडित जी को दे दिए। वे प्रभु-धन को जेब में रखने लगे तो मैंने सकुचाते हुए उन्हें दान-पात्र बता दिया और कहा- प्रभु तक मेरी अर्जी पहुँचा दो, प्रभु से मेरी बात करा दो। वे कुटिल हँसी हँस दिए और बोले, ठीक है आपके प्रभु सुबह-सुबह आ जाएँगे।

मैं देर रात तक सोचता रहा कि पंडित लोग क्या झांसा मारते हैं, ममतामयी माँ का ब्रेनवाश कर देते हैं। और फिर माँ मुझ जैसे विज्ञानी लोगों को

अपनी कसम दे कर स्वाहा-स्वाहा करने में पारंगत बना देती है। सवेरे-सवेरे मैं बड़ी मीठी नींद में था। प्रभु वाकई आ गए तो भी मैं यह मान कर सोया रहा कि यह वहम् है। मैंने करवट बदल कर चादर तान ली। प्रभु बोले, वत्स मैं अन्तर्यामी हूँ। मैं जानता हूँ तुम्हें मुझ पर ही संदेह है। मनुज है ही ऐसा बुद्धिहीन, सच को भ्रम समझता है और छल, कपट, आडंबर को सच मानता है। मैं उठने लगा तो कृपानिधान ने कहा- युवा पीढ़ी सोये हुए बेहतर चिंतन करती है, तुम सोये रहो और बताओ क्या बात है?

- प्रभु, सबरीमाला मंदिर में बड़ी गड़बड़ व्यवस्था है। माहवारी आयु वर्ग की सब महिलाओं का मंदिर में प्रवेश निषेध करना पागल मानसिकता का प्रतीक है। तथाकथित धर्मात्मा लोग ऐसा बर्ताव कर रहे हैं जैसे कि माहवारी किसी की हत्या करने जैसा घृणित हो गया। कितने ही सफेदपोश हैं जो हत्याएँ और उससे भी घृणित काम करते हैं पर बड़े ठाठ से मंदिर आते हैं, पुजारी और प्रबंधक उनके चरणों में लौट कर पैसा कमाते हैं और ऐसे लोग आपके चरणों में झुक कर पुण्य भी कमा जाते हैं। नाथ, तब भक्त महिलाओं के साथ इतना अन्याय क्यों?

- वत्स, मैंने तो ऐसा कोई नियम नहीं बनाया। मेरे लिए सब प्राणी बराबर हैं। धर्म और ईश्वर के नाम पर पाखंड फैलाना आदमी की ही शैतानी है। जब पाखंड की रक्षा करनी हो तो सबसे पहले ये पाखंडी ही दौड़ते हैं।

प्रभु ने मुझे समझाया कि उनके दरबार में स्त्री हो या पुरुष या निर्लिंगी, उनके लिए तो भक्त, भक्त है। भक्त आस्थावान हो तो पत्थर में प्रभु को देख लेता है और भक्त में आस्था नहीं हो तो साक्षात् प्रभु भी वहाँ आ जाएँ, वह मेरे जैसा सोया रहता है। इच्छा हुई प्रभु से पूछूँ क्यों आज हमारी आस्था, धन, चढ़ावे और कर्मकांड से तौली जाती है, आचरण की पवित्रता से नहीं। मुझे हमारे शास्त्रों का ख्याल आया जो ऐसे आख्यानों से भरे पड़े हैं जहाँ नाग, बंदर, हाथी आदि भी मोक्ष पा गए तो क्यों यहाँ धर्मांध पुरुष नारी की माहवारी के इर्द-गिर्द उलझा हुआ है। क्यों पुरुष ने ऐसी चालाकियाँ घड़ी हैं कि जैसे भी हो बस स्त्री घर में बंद रहे। शास्त्रों में स्त्री को देवी मान कर घर में उसे दासी बनाना सरल है। उसे मंदिरों में मनोरंजन के लिए देवदासियाँ स्वीकार हैं पर वह सिर्फ महिला रह कर मंदिर में आना चाहे तो स्वीकार नहीं। प्रभु से कोई उत्तर नहीं मिला तो मैंने उन्हें खोजा, प्रभु वहाँ थे ही नहीं।

मेरे प्रश्न ने पुरुष की कथनी और करनी का सत्य बता दिया, उसकी जीभ पर स्त्री देवी-देवी और उसके दिमाग में स्त्री दासी-भोग्या। महिलाओं और पुरुषों के मूत्रालय अलग हों यह प्रयोजन संगत है, क्या हम हमारे मंदिरों या आस्था केंद्रों को भी ऐसा प्रयोजन मूलक बनाना चाहते हैं? हमें तलाशना होगा कि वाकई स्त्री की देह अपवित्र है या गंदगी पुरुष के दिमाग में भरी है! रजस्वला स्त्री की देह गंदी होती तो भगवान ने जो बहुतेरे अवतार लिए हैं वे कथित गंदी जगह से क्यों लिए? रजस्वला को अपवित्र घोषित करने वाले ये पवित्र लोग कहाँ से जन्में? इस सड़ी मानसिकता पर कबीर ने करारा प्रश्न किया था- जो तू बामण-बमणी जाया, आन बाट काहे नहीं आया। प्रजनन की आवश्यकता और नारी के स्वत: सामान्य होने की प्रक्रिया के चलते विशिष्ट आयु वर्ग की सारी महिलायें कैसे अपवित्र हो गयीं? शारीरिक स्वच्छता, स्त्री हो या पुरुष, सबके लिए अहम् है। इस सदी में महिला के बारे में यह धारणा बना लेना कि वह अस्वच्छ रहते हुए मंदिर या आस्था-घर चली जाएगी कट्टरपंथियों का घटिया सोच है। इस आयु वर्ग के शुक्राणुओं से भरे पुरुष सदा पवित्रतम और नारी अपवित्रतम, यह कैसा नियम हुआ!

सभी धर्म बनाये तो पुरुष ने ही हैं। अपनी उच्चता सिद्ध करने का शास्त्रीय मौका भला वह कैसे छोड़ सकता था! शताब्दियों से उसने महिलाओं के अपवित्र होने के जुमले का आनंद उठाया। जब चाहा उसे संभोग से समाधि का साधन माना और जब चाहा उसे अछूत बना कर घर के कोने में सीमित कर दिया। पुरुष की इच्छा हुई तो उसने महिला को देवी बनाया, पैर पूजे और जब पुरुष का दिमाग विकृत हुआ तो स्त्री उसके लिए भोग्या, हेय, चुड़ैल, डाकण और उसके दिमाग की सारी विकृतियों की प्रतिबिंब बन गयी।

दुनिया के लगभग सभी धर्म (सिख धर्म को छोड़ कर) माहवारी की अवधि में स्त्री को अपवित्र मानते हैं। धर्म ही किसी को अपवित्र मान ले तो ऐसे धर्म का क्या औचित्य? बावजूद इसके, सबरीमाला जैसा क्रूर व्यवहार तो कहीं नहीं दिखता। शिव तो अर्धनारीश्वर बन कर, भगवान के स्त्री या पुरुष रूप के भेद को ही तोड़ जाते हैं पर यहाँ भगवान और भक्तों की जननियाँ ही मठाधीशों के निशाने पर हैं। सबरीमाला में प्रवेश सबके लिए खुला हो, राजनीति के दलदल में आस्था को न घसीटा जाए। सबकी हो अर्चना-ध्यान की माला, सबकी हो सबरीमाला।

साहित्य की सही रेसिपी

इन दिनों साहित्य में रस नहीं रहा, निचुड़ गया है। साहित्य क्विंटलों में छप रहा है और सौ-दो सौ ग्राम के पैकेट में बिक रहा है। जगह-जगह पुस्तक मेलों में बिक रहा है पर रसिकों को मजा नहीं आ रहा। साहित्य को सर्वग्राही होना चाहिये, समोसे जैसा होना चाहिये। जहाँ प्लेटें उपलब्ध हों वहाँ साहित्य को समोसे खाते हुए पढ़ा जा सकता है, पर जहाँ प्लेटें न हों वहाँ साहित्य के ऊपर समोसा रख कर खाया और पढ़ा जा सकता है। समोसा, रसिकों को साहित्य से ज्यादा आनंद देता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि साहित्य को समोसा होना चाहिए, आइसक्रीम होना चाहिए, छप्पन भोग होना चाहिए ताकि रसिकों का पेट भर सके।

आप से कोई पूछे कि जलेबी में रस का क्या स्थान, तो आप क्या कहेंगे? रस हो तो इतना हो कि जलेबी रस भरी रहे। साहित्य में रस का सृजन ऐसे ही होना चाहिए, पाठक साहित्य देखे तो उसके मुँह में रस भर जाए। ऐसी रस पूर्णता ही पाठक को साहित्य का आसक्त बनाती है।

हलवाई जानता है कि उसे क्या बनाना है रसीले गुलाबजामुन, सूखे रस वाली काजू-कतली या चटपटी पानी-पूरी। वह जो भी बनाए, उसका उद्देश्य होता है रसिकों के मुँह में रस लाना। साहित्यकारों को हलवाई से अक्ल लेना चाहिए और पाठक को इतना लालायित कर देना चाहिए कि वह श्रृंगार रस का कवि देखे तो पाठक की लार टपकने लग जाए। साहित्य को इतना समर्थ होना चाहिए।

हमें साहित्य के नौ, दस या ग्यारह रसों के नाम गिनने की जरूरत नहीं है। सफल होना हो तो प्रेक्टिकल होना चाहिए। पुराने टाइप के रसों की रसानुभूति करने का क्या मजा! इक्कीसवीं सदी में नए रस साहित्य में लाएँ। रस ऐसे हों जो

आपके भावों को उनके नाम की तरह उद्दीप्त कर दें, कभी आम रस की, कभी रसमलाई के रस की, तो कभी नींबू-पानी के रस की प्रत्यक्ष अनुभूति दें। पाठकों को ऐसे डायरेक्ट रस पसंद न हों पर वे रसानुभूति सिर्फ मुँह के भीतर ही चाहते हों तो उन्हें पकौड़े, कचौड़ी, चाट जैसे विकल्प मिलें जो सीधे रसेन्द्रिय को उत्तेजित करते हैं। साहित्य को ऐसा होना चाहिए कि चाहे उसमें रस प्रत्यक्ष दिखे न दिखे, पर वह रस पूर्ण हो। रस है तो रसिक है।

आलोचक कहते हैं साहित्य को लुगदी साहित्य नहीं होना चाहिए। ठीक है, पर मुख्य धारा के साहित्य में कुछ तो हो कि एक बैठक में खाने का मन करे। स्वादिष्ट हो तो हर माल खपता है, अनूदित साहित्य भी हिंदी में धड़ल्ले से खप रहा है। डोसा, इडली, सांभर सब खपता है। सांभर है तो, इडली-डोसे में रसोत्पत्ति है। यदि साहित्य के मूल अवयव में स्वाद न हो तो साहित्यकार को चाहिए कि वह उसमें पूरक सांभर मिलाए और रस उत्पन्न करे।

साहित्य में देसी या विलायती नशीले पेय रसों का स्थान गुप्त है। ये साहित्येतर रस हैं। ये सम्मेलनों और गोष्ठियों को अखाड़ा बना देते हैं। वैसे ही साहित्य में बहुत अखाड़े हैं, इनके पहलवान गुजर गए हैं पर भौतिक अखाड़े बचे हैं। साहित्य तो प्रेम का संवाहक है, प्रेम की जरा सी आँच मिले तो हृदय पिघल जाता है। इसलिए मुझे लगता है, साहित्य का स्थायी भाव आइसक्रीम जैसा बनना है। इसलिए आइसक्रीम को हमारे महत्तर साहित्य का अंग होना चाहिए।

शब्द खुद-ब-खुद अपना प्रतिष्ठित अर्थ बदल ले और दूसरा अर्थ अपना ले, इसे साहित्य में कहते हैं ध्वनि। जितने द्विअर्थी संवाद हैं, वे हैं ध्वनि। जितने दलबदलू हैं वे हैं ध्वनि। इसलिए साहित्यकार को किसी एक खूँटे से बँध कर नहीं रहना चाहिए, खूँटे बदलते रहना चाहिए। जहाँ हरा चारा दिखे वहाँ मुँह मारना चाहिए। उसे रचना के भरोसे नहीं रहना चाहिये। जो रचना खुद संपादकों को आकर्षित नहीं कर पाये, पाठकों को नहीं बाँध पाए, आलोचकों को नहीं रिझा पाए तो रचनाकार को सोचना चाहिए। उसे चाहिए कि वह अपनी रचना में पर्याप्त नुपूर बाँधे कि वाक्य खत्म होने से पहले ही पाठक झंकृत हो जाएँ। रचना में ऐसी ध्वनि हो, आरोह-अवरोह हो, राग-बंदिशें हो। अब व्यंग्यकार का यह काम तो नहीं कि वह बताए कहाँ क्या-क्या हो, पर जो भी चाहिए वह यथास्थान हो। शब्दों

का अवमूल्यन न हो बस।

पाठक साहित्य में अलंकार माँगते हैं। अलंकार भले कम हो, आटे में नमक जितना तो हो ही। साहित्य पढ़ो–सुनो तो लगे कि अलंकार का स्वाद आया। साहित्य देखो तो लगे कि कुछ अलंकार देखा। शास्त्रकारों ने आभूषणों से सुसज्जित नववधू का श्रेष्ठ अलंकार माना है लज्जा। अलंकारों से सुसज्जित साहित्यकारों में थोड़ी–सी लज्जा या संकोच आ जाए तो उनका साहित्य कालजयी हो जाए। श्रोता और पाठक उन पर फिदा हो जाएँ।

साहित्य की भाषा लच्छेदार होनी चाहिए, रबड़ी–सी। दूध और शक्कर का स्वाद तो चाय में भी आता है, पर इनका जो स्वाद रबड़ी में आता है वह रबड़ी को उल्लेखनीय बनाता है। साहित्यकार को चाहिए कि वह साहित्य के दूध और रस की मिठास को इतना उबाले, इतना घोंटे कि वह लच्छेदार हो जाए। लच्छेदार होना ही साहित्य की सार्थकता है, उसका वैभव है। साहित्य की रेसिपी में बदलाव की जरूरत है। साहित्य बनाने वाले हलवाइयों को मास्टर शैफ बनने की जरूरत है। साहित्य को भोजनालय शैली में पकाने की बजाय पाँच सितारा रेस्तरां स्टाइल में बनाने का यह समय है। कम बनाओ पर लजीज बनाओ, ढंग से गार्निश करो, अदब से परोसो और माहौल बना कर खिलाओ। ये कोई बात हुई कि जो मर्जी हुई बना दिया, रख दिया और हुक्म दे दिया, खाना है तो खा लो, यही है। हम सब बिना इच्छा के खा रहे हैं और स्वाद के लिए तरस रहे हैं।

झंडा ऊँचा रहे हमारा

तिरंगा झंडा हमारी आन, बान, शान है। शहीदों के शव का सम्मान है, राजनेताओं के रुतबे की पहचान है और अफसरों के लिए सोने की खान है। आज सबके लिए झंडा फहराने का दिन है। राजभवनों पर झंडा है तो झुग्गी-झोपड़ियों पर भी। झंडे में करोड़ों लोगों के सपने हैं। केसरिया, सफेद और हरे, तीन रंग पट्टों से बना-तना है तिरंगा। बच्चे इसी क्रम में तिरंगे के रंग बताते हैं पर बड़े लोगों में कन्फ्यूजन है। वे केसरिया ऊपर रखें या हरा रंग ऊपर करें। वे अपनी असंदिग्ध राजनैतिक निष्ठा के हिसाब से तिरंगा टाँगना चाहते हैं। सही सुना आपने, उन्हें तिरंगे में फूल-गुलाल भरवा कर इसे ऊँचे खंभे पर टंगवाना होता है, फिर सलामी लेनी होती है। वे समझते हैं कि सलामी उन्हें दी जा रही है, बैंड वाले उनके सम्मान में धुन बजा रहे हैं, लोग उनके सम्मान में खड़े हो रहे हैं। वे जनमानस के सामने अपने बत्तीस दाँत सार्वजनिक कर सलामी मुद्रा में खड़े हैं। झंडे में डाली गई कुछ पंखुड़ियाँ और गुलाल उनकी जो पब्लिसिटी करा सकते हैं, वैसी पब्लिसिटी आदमक़द हार भी नहीं करवा सकता।

वे सावधान हो कर जन-गण-मन सुन रहे होते हैं कि कोई अदना कर्मचारी आ कर फुसफुसाता है, सर झंडा उल्टा चढ़ गया है। प्रशासन तुरंत लीपापोती में लग जाता है। झंडे का क्या है, उल्टा चढ़े या सीधा, झंडे को बस चढ़ना चाहिए। उन्हें डोर खींचने से मतलब है। आप झंडे को गौर से देखें। यह जो केसरिया रंग है, भगवा संस्कृति का प्रतीक है, शौर्य का प्रतीक है। जो सरकार के विरोध में बोले उसे अपने और किराये के शौर्य से धो डालना केसरिया हो जाना है, राष्ट्रवादी हो जाना है। राष्ट्रवाद कूट-कूट कर भरा हो तो शौर्य एक मिनट में बाहर

आ जाता है। जो लोग जागरूक राष्ट्रवादी हैं और अपना शौर्य नहीं बता सकते उन्हें आँखों पर केसरिया पट्टी बाँध कर जय-जयकार बोलना आना चाहिए। हनुमान अपना सीना चीर कर नहीं बताएँ तो उन्हें कोई राम भक्त नहीं मानता। जिनमें राष्ट्रवाद नहीं है, उन्हें कितनी बार कहें कि आप पड़ौसी देश में चले जाएँ।

सफेद पट्टा सत्य और पवित्रता का प्रतीक है। आपको सत्य और पवित्रता का मतलब पता नहीं हो तो आपको मेरा प्रणाम, आप सत्य-पुरूष हैं। हाँ, पवित्रता कठिन कर्म है। गाँधी की तरह कम कपड़े पहनो और पवित्र रहो। पंद्रह लाख का डायमंड सूट पहन कर पवित्र रहना मुश्किल होता है, तब पवित्र होने का झूठ फैलाना पड़ता है। अपना बहुमत हो तो झूठ को बार-बार बोलना पड़ता है ताकि वह ही सच लगने लगे। मंदिर, मस्जिद लगने लगे या मस्जिद, मंदिर हो जाए। इस काल में सफेद रंग के क्या कहने, ऊपर से सफेद कुर्ता-पाजामा हो तो सात ख़ून भी माफ हो सकते हैं। वैसे सफेद रंग, सातों रंगों का मिश्रण है, इसलिए यह आभासी मित्रता का प्रतीक भी है। काश तीसरे मोर्चे वाले इसे अपना लें। इस पट्टे में जो चक्र है उसके अनुरूप प्रधानमंत्री बनने लायक चौबीस नेता तीसरे मोर्चे के पास ही हैं। ये राजनेता मरणासन्न हैं, पर एकता की आस में फिर जी जाते हैं। वे इस चक्र को अशोक चक्र समझते हैं। अशोक चक्र वीरों को दिया जाता है, कई बार मरणोपरांत दिया जाता है। उनके जीते जी उनकी सरकार बनने की उम्मीद कम है।

अब चक्र का अर्थ बदलने लगा है। लोग धक्का मार कर इसे लुढ़काने की फिराक में हैं ताकि जो इसके पथ में आने की कोशिश करे, इसके नीचे आ कर दब मरे। न मरे तो कोई बात नहीं, बस उसकी आवाज दब जाए, भले फिर वह आदमी हो, सुप्रीम कोर्ट हो, सीबीआई हो या रिजर्व बैंक हो। लोग डरे हुए हैं और चक्र ढकेलने वालों को कनखियों से देख रहे हैं।

चलिए हरे रंग को हरित क्रांति का, सौभाग्य का, पैगंबर का प्रतीक मान लेते हैं। कैसी समृद्धि है यह कि राफेल का बिचौलिया लाखों करोड़ की आढ़त खा रहा है, और कर्ज में डूबे किसान आत्महत्या कर रहे हैं। सारा विपक्ष बिचौलिये से पार्टी फंड में चंदा चाहता है। इसलिए राफेल पर राजनीति हो रही है, किसान पर सिर्फ हो-हल्ला हो रहा है। राजनीति का अपना कोई रंग नहीं है, वह जहाँ

घुसती है अपनी औकात बता आती है। केसरिया रंग को साम्प्रदायिक बना देती है और हरे रंग को आतंकी करार देती है। ऐसे में हमारा झंडा किसी प्रायोजित दंगल का निशान लगता है। झंडे को झंडे का महत्त्व देना हो तो डंडा चाहिए।

हमें इस बात की ख़ुशी होनी चाहिए कि झंडे में केसरिया, सफेद और हरे रंग के पट्टे एक–दूसरे के बराबर रखे गए। राजनीति ने केसरिया और हरे रंग को इतना चटख बना दिया है कि दूसरे सारे रंग इनमें दब जाते हैं, और सफेद तो ऐसा हो गया है कि सबको सोख लेता है। हमारी संसदीय प्रणाली जिंदा है, लोगों की उसमें आस्था है पर निर्लज्ज राजनीतिज्ञ उसमे अपराधियों, गुंडों और हत्यारों को भर रहे हैं। अब जो बाहुबली है, हिंसक है वह राजनेता बनने की प्राथमिक शर्त पूरी करता है। कितनी सरकारें आयीं–गयीं, अपनी विचारधारा के हिसाब से वे देश को जिस तरह तहस–नहस कर सकती थीं, कर गयीं।

अच्छे दिनों की उम्मीद में तिरंगा निडर खड़ा रहा, किसी सरकार ने उसे बदलने के बारे में नहीं सोचा। इन तीन रंगों पर नफरत का कोई रंग नहीं चढ़ा। मैं जोर से बोलना चाहता हूँ भारत माता की जय और गाना चाहता हूँ झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इकत्तीसवीं सदी में

यह व्यंग्य में इकत्तीसवीं सदी में लिख रहा हूँ, ईसवी सन तीन हजार बीस में। आधुनिक व्यंग्यकार टाइम मशीन के सहारे एक हजार साल पीछे लौट सकता है। बस इसी भूतदृष्टि के सहारे मैं इक्कीसवीं सदी की बात कर रहा हूँ। उस जमाने में सड़क किनारे की एक गुमटी पर चाय बनाने वाले एक लड़के को देश सेवा करने का फंडा समझ में आ गया, फिर तो वह चुनाव पर चुनाव जीतता गया। वह अति साधारण वस्त्र पहनता था, इसलिए लंगोटिए उसके जिगरी बन जाते थे, जो एनकाउंटर करने में माहिर होते थे। एक दिन उसकी ऐसी निकली कि वह एक गरीब महादेश का बादशाह सलामत बन गया। सलामत इसलिए कि बहुमत उसकी मुट्ठी में था। विरोधी उसके सामने ठुमका लगाते थे। जितनी देर उसके विरोधी एक आँख मींच कर व्यंग्य बाण चलाते, उतनी देर में वह धड़ाधड़ राफेल जैसे कई सौदे निबटा देता। लोग उसे हिटलर कहते तो वह बहुत हँसता और कहता– प्रजातंत्र में कोई हिटलर नहीं होता, बस एक बादशाह होता है और वह मैं हूँ ना। नक्कारखाने में उसकी तूती बज रही थी, सिर्फ उसकी जय-जयकार करने से पुण्योदय हो जाता था। पुण्य में कुर्सियाँ मिल रही थीं। भक्तों के अच्छे दिन आ रहे थे।

एक दिन उसने अपने मन की बात कही कि रिजर्व बैंक के पास लाखों करोड़ रुपये हैं। ये सब पैसा गरीबों में बाँट देना चाहिए। अंग्रेजों ने और उनके जाने के बाद उनके चाकरों ने देश को लूट-लूट कर गरीब बना दिया है। अब वक्त आ गया है कि गरीबों के खाते में रुपये लबालब भर दिए जाएँ ताकि कोई गरीब नहीं रहे। जनता ने बड़ी तालियाँ बजाई, दुआ की कि बादशाह की सल्तनत कायम रहे।

बादशाह ने दरबानों की मीटिंग बुलाई। पार्टी के अध्यक्ष हमेशा उनके

दाहिनी ओर बैठते थे, और फुसफुसा कर बादशाह के कान भरने में प्रवीण थे। वे बहुत घाघ थे, एक मोहरा चलते थे, तो दस मोहरों की ढिबरी टाइट हो जाती थी। उन्होंने कहा– बादशाह का इकबाल बुलंद हो, हमारी सल्तनत हमेशा कायम रहे। हे नेक बादशाह, अपने पैर पर कुल्हाड़ी मत मारो। रिजर्व बैंक को पार्टी के खाने के लिए छोड़ दो। गरीबों को अमीर बनाने का ख़्याल सिर्फ भाषणबाजी के लिए अच्छा है। सब गरीब अमीर हो गए तो अनर्थ हो जाएगा। मेरी बात गौर से सुनो। जो गरीब हैं, वे आपका वादा सुन कर वोट देने आते हैं। जो अमीर हो गए हैं, उन्हें वोट देने में शर्म आती है और जो महाअमीर हो गए हैं वे देश छोड़ रहे हैं, बस गुपचुप चंदा पहुँचा देते हैं। हमें वोट चाहिए इसलिए गरीब चाहिए। जितने ज्यादा गरीब उतने ज्यादा वोट। इसलिए वादे के उलट करो, ज्यादा गरीब बनाओ मेरे परवरदिगार।

बादशाह हतप्रभ हो गए। वे बोले, गुरू मैं धन्य हुआ, अब समझ में आया कि क्यों पहले शाह, बाद में बादशाह। अध्यक्ष जी आगे बोले, हे बादशाह हम आपकी सभाओं में लाखों लोगों को भर–भर कर लाते हैं। गरीब लोगों को अत्ता–भत्ता और भाड़ा दे कर हम भीड़ बनाते हैं, भीड़ से आपकी शान बढ़ती है मेरे मौला। गरीब होंगे तो भीड़ जुटेगी, भीड़ जिंदाबाद के नारे लगाएगी तो आकाश–पाताल में हल्ला सुनाई देगा। प्रेस के कैमरे और टीवी की स्क्रीन पर लोग ही लोग होंगे और हमारे नाम वोट ही वोट होंगे। गरीब होगा तो गला फाड़ कर चिल्लाएगा, जब तक सूरज–चाँद रहेगा, बादशाह का नाम रहेगा। इसलिए हे सिकंदर, राज करना है तो आप और गरीब बनाओ, रात–दिन गरीब बनाओ, हम उन सबको अपनी भीड़ में शामिल कर लेंगे और अपना झंडा पकड़ा देंगे। बादशाह बहुत ख़ुश हुए, उनका सीना सत्तावन इंच हो गया।

बादशाह ने अपने नवरत्नों से कहा– चाणक्य के बाद भारतभूमि पर अब जा कर कोई नीतिकार पैदा हुआ है। आप गरीबी और गरीब पर उनके विचार सुनें और गुनें। अध्यक्ष जी अपनी प्रशंसा सुन कर बहुत खुश हुए। गधा ऊँट को कहे कि तुम्हारी ग्रीवा सुदीर्घ है, कटाव अद्‌भुत है, तुम सुंदरतम हो, तो गधे का भी साहित्यकारों जैसा कर्तव्य हो जाता है कि वह कहे, वाह आप कितने सुंदर सुर लगाते हो, क्या आवाज है, सारे वोटरों को लामबंद कर लेते हो। तद्‌नुसार अध्यक्ष जी ने बादशाह की लपेट–लपेट कर तारीफ की। परस्पर गुणगान करने में वे गरीब

और गरीबी के मुद्दे को भूल गए। इस सुअवसर पर नवरत्न भी पीछे नहीं रहे, उन्होंने इन दोनों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर सात चुनावों के लिए अपने परिवार के टिकट पक्के करा लिए। फिर किसी ने भारतमाता की जय का नारा लगाया और अध्यक्ष जी मुद्दे पर आये।

वे बोले- मित्रो, यह चर्चा अति गोपनीय है और आपके समझने के लिए है बस, तो ध्यान से सुनिए। हमें देश के हर हिस्से में गरीब चाहिए। गाँवों में खेतीहर गरीब चाहिए तो महानगरों की झुग्गी-झोपड़ी और चालों में मजदूर गरीब चाहिए। गरीब देश को बाँध कर रखता है, चुनाव प्रणाली को जिंदा रखता है। इस तरह गरीब प्रजातंत्र को पोषित करता है। बादशाह के लिए सबसे मुफीद काम है गरीब के लिए योजना बनाना और गरीबी पर भाव-विभोर भाषण देना। गरीबों को लेकर हमारा सोच एकदम साफ होना चाहिए। भगवान राम के जमाने में गरीब थे, केवट थे, शबरी थी। भगवान कृष्ण के जमाने में ग्वाले थे, सुदामा थे। हमारे स्वर्णिम युगों में भी गरीब रहे हैं। सब राजाओं ने गरीबों को पाला-पोसा और महान हो गए। आप समझ रहे हैं न, गरीबी को कोई खत्म नहीं करता, सबके लिए गरीब पालने-पोसने की चीज है।

मित्रो, गरीबों के लिए हमने इतना विशाल प्रशासन खड़ा किया है। तरह-तरह के दफ्तर हैं, किस्म-किस्म के अफसर हैं, घड़ियाल हैं, मगरमच्छ हैं, साँप और सपेरे हैं। अमीर तो इन सबको खरीद कर अपनी जेब में रख सकते हैं। आपने गरीब खत्म कर दिए तो हम शासन किस पर करेंगे? हर सत्ताधीश कहता रहा है गरीबी हटाओ पर गरीबी युगों-युगों से शाश्वत रही है। हमें भी जोर-जोर से चिल्लाना है गरीबी हटाओ पर गरीबी हटाना नहीं है। जो नहीं हो सकता वह कर दिखाने का सब्जबाग बताना श्रेष्ठ राजनीति है। करने का नाटक करते हुए ही लोग महान राजनीतिज्ञ बने हैं, हमें भी यही करना है। सत्ता का सच से क्या संबंध! जो हम कहते हैं, वह करने लग जाएँ तो उसमें क्या राजनीति, क्या सुशासन! नवरत्नों ने बहुत तालियाँ पीटीं। बादशाह मुस्कुराते रहे। बादशाह धृतराष्ट्र हो कर मुस्कुराता रहे तो भी सौ कौरव इकट्ठे कर लेता है। बादशाह सलामत और अध्यक्ष जी की बहुत जय-जयकार हुई तो बादशाह सलामत बोले- साथियो, आओ हम प्रण करें, हम हर प्लेटफॉर्म पर गरीब की बात करेंगे, गरीबी हटाने की बात करेंगे।

इक्कीसवीं सदी का वो दिन था और इकत्तीसवीं सदी का आज का दिन है, गरीबी वहीं है। राजनेताओं के दिन जैसे तब बदले थे, अब भी बदल रहे हैं।

इस रचना समय में

मित्र सम्पादक की ईमेल आई, आप अपना कोई कालजयी व्यंग्य शीघ्र भेजिए। मैंने अपने सारे व्यंग्य टटोल मारे। उनमें कोई ऐसा पराक्रमी व्यंग्य नहीं निकला, जिसे मैं कालजयी कह सकूँ। मेरा मन वितृष्णा से भर गया। ओह, सारा अकालमयी जीवन बीत गया पर कुछ कालजयी नहीं लिखा। आमतौर पर व्यंग्य लिखना टोपी सिलने जैसा काम है। अन्ना अनशन करें तो गाँधी टोपी की माँग होती है, रामलला का टेंट उखड़वाना हो तो विशेष टोपी चाहिए। दक्षिणपंथियों को बेदखल करना हो तो क्रांति के आह्वान के लिए लाल टोपी की माँग होती है। जैसी माँग वैसा लेखन, जैसा काल वैसा साहित्य। कोई ऐसा शाश्वत समय आया ही नहीं कि कालजयी व्यंग्य की माँग उठती। मैं जिस समय और समाज में रहता हूँ वह गिरगिटिया है। मैं सवेरे सो कर उठता हूँ तो सिर्फ मौसम या खबरों के रंग ही नहीं बदलते, आदमी की निष्ठा, संवेदना और आत्मा की आवाज तक बदल जाती है। आश्रयदाता, आश्रयपाता की जेब में सिमट जाता है, उसमें विलीन हो जाता है। देश राजनीतिक पार्टी में सिमट जाता है। कुर्सी, राजनेता में विलीन हो जाती है। लेखन, टीआरपी में लीन हो जाता है। महानता, टुच्चेपन में विलीन हो जाती है।

मैं कई दिनों से टटोल रहा हूँ, कुछ ऐसा माल मिल जाए जो शाश्वत हो। मैं जो लिख पाता हूँ, वह बारीक व्यंग्य होता है। अब जो स्पीड रीडिंग करते हैं वे चाहते हैं कि व्यंग्य तत्काल बन जाए। संज्ञा में व्यंग्य नहीं बने तो क्रिया में व्यंग्य बन ही जाना चाहिए। वे विशेषण तक रुकें तो मैं व्यंग्य का ढेर लगा दूँ आलसी, किताबभक्षी पाठकों के लिए। उन्हें समझना चाहिए आदमी का बच्चा जन्म लेने में

ही लगभग नौ महीने ले लेता है, फिर भी एक जन्म में उसके आदमी बन जाने की गारंटी नहीं होती। सोचता हूँ आदमी पर ही लिखूँ। आदमी के साथ बड़ी ज्यादती यह है कि वह नश्वर है, जिस पर लिखता हूँ वह दुनिया से विदा हो जाता है। मैं मारक नहीं लिखता पर मेरा लिखा पढ़ कर वह शर्म से मर जाता है। आदमी के मरने पर मुझे घोर पीड़ा होती है, मैं जिस पर शाश्वत लिख रहा था वह बड़ा दगाबाज निकला, रचना छपती उसके पहले ही चल बसा। मैंने सोचा, आदमी की बजाय आदमी की प्रवृत्तियों पर लिखना चाहिए। ज्ञानियों ने कहा भी है भूत भाग रहा हो तो उसकी लंगोट से संतोष कर लेना चाहिए। वाह, यह हुई शाश्वत बात। आदमी नश्वर है पर उसकी लंगोट शाश्वत है। इसलिए उसका बलात्कारी होना शाश्वत है, व्याभिचारी होना शाश्वत है। इन प्रवृत्तियों का पूरा का पूरा कुनबा रिश्वतख़ोरी, बेईमानी, चोरी आदि सब शाश्वत हैं। हड़पने की प्रवृत्ति शाश्वत है, वह कौरव काल में थी, ट्रम्प-पुतिन काल में भी है। हमारे समय में हड़पने का कौशल मुखर हुआ है, शस्त्रों की मारक क्षमता बढ़ी है। मैं खुश हूँ कि एक लंगोट पकड़ में आई तो शाश्वत विषयों का गड़ा ख़जाना मेरे हाथ आ गया।

कालजयी लिखने का कीड़ा जो दिमाग में घुसा है, कबसे बड़ी खलबल मचा रहा है। मेरे मित्र कहते हैं ईश्वर शाश्वत है, प्रेम शाश्वत है, प्रकृति शाश्वत है, इन पर लिखो। मेरा लेखक मन कहता है, ये विषय भले शाश्वत हों पर घिसेपिटे हैं। इन पर नया लिखो तो भी पाठकों को लगता है कि पुराने फर्नीचर पर रद्दा घुमा कर पॉलिश कर दी गई है। लेखन में ऊपरी चमक तो है, पर इसके मूल में आदिम बासी गंध है। मुझे ऐसा शाश्वत लिखने की बजाय अपने सामान्य ज्ञानी लोगों के साथ बैठ कर दुनियादारी की बातें करना ज़्यादा रुचिकर लगता है। जिस लेखन में सोचना पड़े, संदर्भ लेने पड़ें ऐसा कठिन, सायासी लेखन जोर-जबरदस्ती वाला लेखन है, कृत्रिम लेखन है। मुझे जो बिना सांप्रदायिक चश्मा लगाये साफ-साफ दिखता है वैसा ही लिखना अच्छा लगता है। सरल-सच्चे विचारों को लिखने में दिमाग जैसी जटिल प्रणाली की जरूरत नहीं लगती। मेरे कई समकालीन जो दावा करते हैं कि उनका लेखन कालजयी है, उसे मैं अपनी बुकशेल्फ के टॉप पर सजा देता हूँ। चूँकि यह चिरकाल के लिए लिखा गया है, इसलिए पाठक अनंत समय तक इसे पढ़ना टालते रहते हैं। जो भी हो, शाश्वत

लेखन का स्थान शीर्ष पर होना चाहिए, भले जब पढ़ने का मन हो उसे सीढ़ी लगा कर नीचे उतारना पड़े। मैं हवा में लटक कर उसे नहीं पढ़ सकता। अपनी कुर्सी या सोफे के स्तर पर जो लेखन है पाठक उसे ही पढ़ सकता है। फिर, शाश्वत लेखन छापने वाली पत्रिकायें जो संपादक को समझ में आये वैसा छापती हैं, सामान्य पाठक के ऊपर से निकल जाये तो शाश्वत लेखन भारी-भारी लगता है।

अमर हो जाने के मुगालते में मैंने ढेर सारा शाश्वत लिखा है। ऐसी रचनाओं को बहुत मार पड़ती है, अपमान सहना पड़ता है। समझदार संपादक स्वीकृत नहीं करते हैं और जो भ्रमवश स्वीकृत कर लेते हैं, वे उन्हें छापने के मामले में मर्यादा पुरुषोत्तम हो जाते हैं। चौदह अंकों का वेटिंग पिरियड बता देते हैं। शाश्वत लेखन की यही नियति है। अशाश्वत लिखो- राजनीति पर, मीटू पर, अमेरीकी राष्ट्रपति पर, फटाफट छपता है। इतनी जल्दी छपता है कि लेखक क्या प्रूफरीडर भी प्रूफ नहीं देख पाता। पाठक उसे एक बार नजर भर कर देख ले इतना बहुत है। एक अनुलोम-विलोम के समय में किए गए लेखन से किसी को क्रांति या बदलाव की उम्मीद नहीं होती, पर इतनी देर में अंधविश्वासियों की भीड़ किसी बेकसूर, निहत्थे और राह चलते आदमी को पीट-पीट कर मार डालती है। भीड़ कानून बनने लगे तो भाड़, भांड, भाड़ेतियों और पुलिस की भूमिका पर तत्काल लिखना जरूरी है।

कभी-कभी मैं कालजयी लेखक बनने के बारे में सोचता हूँ। कालजयी लेखन के लिए ट्रस्ट बनाना जरूरी है, ट्रस्ट जो धीरे-से न्यास बन जाए और न्यास धीरे-धीरे पीठ बन जाए। बिना रीढ़ की लचकदार पीठ बन सके तो वह ज्यादा शुभचिंतकों और वफादारों को आंमत्रित कर सकती है। वे सब मिलकर मेरे लेखन को कालजयी स्टेटस दिलाने में सक्षम हो सकते हैं। मैं जानता हूँ, मुझे मरघट भी जाना हुआ तो उठाने के लिए चार लोग चाहिए। यदि ये चार लोग मैंने पहले ही तलाश लिए तो मेरी रचनाओं को कालजयी बनाने वाले प्रतिभाशाली मेरे पास हो सकते हैं।

मैं व्यंग्य लिखते हुए छोटी-छोटी मुरकियाँ लगाता हूँ और सोचता हूँ, क्या बंदिश बनाई, क्या समां बांधा। समां है कि वह बंधता नहीं। यहाँ समां के दो अर्थ हैं, पहला पाठक और दूसरा आलोचक। कालजयी लेखन के लिए आलोचकों

को बाँध कर रखना पड़ता है, जिसके लिए मोटी, मजबूत रेशमी रस्सियाँ चाहिए। अलबत्ता, जब इन्हें बाँध कर सजाने की बारी आती है तो वे खिसक जाते हैं। इस राजदोष के कारण मैं कालजयी लेखन के दायें-बायें ही पहुँच सकता हूँ, केंद्र में जगह खाली नहीं है। केंद्र के दायें या बायें रहने में राजनीति की बू आती है। आप नाक बंद कर बदबू स्वीकार भी करने लगें तो शिकारी आ जाते हैं, वे संगठित होते हैं, मॉब-लिचिंग में सिद्धहस्त होते हैं। वे बताते हैं कि हिंदी के रचनाकार को रचना के साथ-साथ साजिशें रचने में भी विशेषज्ञ होना चाहिए।

आप देख रहे हैं न आम व्यंग्यकार कितना पशोपेश में होता है, शाश्वत लिखना चाहता है, धारदार भी और असरदार भी। एक तीर से तीन शिकार करना चाहता है नासमझ। मेरी सोच से व्यंग्य की जो कारक प्रवृत्तियाँ हैं, वे हर काल और समाज में रही हैं। अन्याय व अनीति को पकड़ना और कलम को थोड़ी धार देना आ जाए तो व्यंग्य अपनी बात कह जाए। मित्रगण जैसा कालजयी लिखते हैं मैं उसे पढ़ता हूँ और फिर व्यंग्य करता हूँ। अब नींव ही अधपकी हो तो मैं क्या करूँ। इसलिए हे मित्रो तुम कालजयी बनने के लिए रचो तो आज के हालात पर लिख-लिख कर मेरी भी कुछ गत सुधरे। निराला हमारे लिए प्रार्थना कर गए - काट अंध उर के बंधन स्तर। अब मैं अपने दिमाग के जाले साफ करने के साथ-साथ हृदय का अंधकार भी दूर कर रहा हूँ। शाश्वत, अशाश्वत के फेर में न पड़ कर सिर्फ लिख रहा हूँ, कोशिश कर रहा हूँ कि मैं अपने लिये न लिख कर हम सबके लिए लिखूँ।

प्रभु की दिव्य दृष्टि

आज प्रभु बेवजह प्रसन्न हो गए। मुझे लगा दाल में जरूर कुछ काला है। बिना फेसबुक के प्रभु के ढेर सारे फॉलोअर्स हैं जो दिन-रात उनकी अर्चना करते हैं। प्रभु उनको ही लाइक नहीं भेजते तो मुझे क्या वॉव भेजते। कल मन बड़ा कसैला था, बार-बार दोहराए जा रहा था। तुम सम कौन कुटिल खल कामी। लगता है प्रभु को किसी ने अलर्ट भेज दिया होगा और वे मजबूरन प्रसन्न हो गए। वे बोले, 'वत्स मैं तुम्हें तीसरी आँख देना चाहता हूँ।'

बिना काला चश्मा पहने खुली आँखों से कुछ भी देखना खतरनाक है। मैं बिजली के तारों पर बैठे कबूतर और आकाश में तैरती चिड़िया को भी देखने लगूँ तो लोगों को लगता है मैं किसी को ताड़ रहा हूँ। काला चश्मा पहन कर मैं कहीं भी देखूँ किसी को पता नहीं चलता कि मेरी निगाहें करम कहाँ फिदा हैं। मैंने बाजार में कहीं तीन आँखों वाला काला चश्मा देखा नहीं था इसलिए प्रभु को विनम्रता से मना कर दिया। दिव्य आँख ले कर जूते खाने में बुद्धिमानी नहीं है।

प्रभु यह दिव्य नयन सीएम सर को दे दीजिये। इतने किसान आत्म हत्या कर रहे हैं और वे कहते हैं 'मैं खुद किसान हूँ, मेरी पाँचों उँगलियाँ घी में हैं, ये देखो।' पिछले दिनों राजधानी में चार बच्चे मर गए। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में डॉक्टर ने कहा- बच्चों के पेट में अनाज का एक कण भी नहीं मिला, वे निश्चित ही भूख से मर गए। सीएम सर ने तत्काल प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और कहा- 'गोदामों में इतना अनाज भरा है कि पड़ा-पड़ा सड़ रहा है, सरकार मुफ्त में अनाज बाँट रही है, तब भला भूख से कोई कैसे मर सकता है।' नाथ, आप ही बताइए सड़ा अन्न कौन खा सकता है। प्रभु बोले यह दृष्टि दोष नहीं, सत्ता दोष है। महाराजा को

वंशानुवंश राज करना हो तो धृतराष्ट्र बनना पड़ता है। यह दिव्य दृष्टि सीएम के काम की नहीं।

'तो प्रभु यह दिव्य दृष्टि न्यायपालिका को दे दीजिए। जंगल राज में जितने ज्यादा क़ानून हैं, न्याय उतना ही कम है। न्यायमूर्तियों को समझ ही नहीं आ रहा कि ताकत उनकी कलम में है या राजनेता के एक फोन में। हर कोई मुँह उठाए न्यायपालिका की तरफ देख रहा है और आकाश में गिद्ध ही गिद्ध मंडरा रहे हैं। नाथ आप ही बताइए सरकारी गिद्धों को झपटने से कौन रोक सकता है?' प्रभु बोले यह दृष्टि दोष नहीं, यह गांधारी की नियति है। महारानी बने रहना हो तो चंगी आँखों पर पट्टी बाँधना होती है। यह दिव्य दृष्टि न्यायपालिका के काम की नहीं।

'तो प्रभु यह दिव्य दृष्टि रिजर्व बैंक के गवर्नर को दे दीजिए। दिन-रात करंसी नोटों पर दस्तखत करते-करते उनकी ज्योति मंद पड़ गई है। महँगाई तेजी से बढ़ी है, वे इसे जीडीपी का बढ़ना बता रहे हैं। विदेशी मुद्रा कोष लबालब भर गया है तो महाअमीर उसे हड़प कर विदेश भाग रहे हैं। प्रभु उदारीकरण की नीति ने परिवारों को उधारीकरण का मोहताज बना दिया है। सरकार को खर्च करना आता है और रिजर्व बैंक को नोट छापना। वे अंधे हो कर गड्ढे में गिर रहे हैं और खुश हो रहे हैं।' पैसे-कोड़ी के मामले में प्रभु को क्या लेना-देना, वे मौन रह गए।

मैंने कहा, प्रभु यह दिव्य दृष्टि पुलिस को दे दें। वैसे भी आपके तैंतीस करोड़ देवता निठल्ले हो गए हैं। उनके कार्यक्षेत्र में आश्रमों, आश्रय स्थलों से लगा कर सड़क पर क्या-क्या होता है उससे पुलिस का रोजनामचा भरा पड़ा है। एक-एक देवता, भारत के एक-एक परिवार की जिम्मेदारी ले लें तो यह धरा पुनः स्वर्ग हो जाए। लोग देवताओं को बुला-बुला कर थक गए हैं, पर वे राजभवनों में गच्च हैं। आपने रामराज्य की तर्ज पर जो प्रजातंत्र बनवाया था, वह बेखटके काम कर रहा है। प्रजातंत्र की पुलिस चौराहे-चौराहे खड़ी है और राजनेताओं को सलामी दे रही है। उनकी आँखों के सामने वह सब हो रहा है जो उनकी पीठ पीछे भी नहीं होना चाहिए था। प्रभु बोले रिजर्व बैंक के गवर्नर या पुलिस की आँखें एकदम ठीक हैं। उन्होंने जो सरकारी चश्मा चढ़ा रखा है उसमें मोतियाबिंद है। वे कुछ भी कैसा भी देख लें, उन्हें वही नजर आता है जो सरकार चाहती है। दिव्य दृष्टि पा कर भी वे अंधे होने का नाटक करते रहेंगे। उन्हें निष्ठा निभाना है। पशु

भी मालिक के प्रति निष्ठावान होता है, तो ये तो आदमी हैं।

प्रभु की साफगोई मुझे प्रभावित नहीं कर पाई। बिना लीपा-पोती के सब सच-सच उगल दो तो उसमें क्या मंथन और क्या प्रतिष्ठा! मैंने कहा प्रभु यह दिव्य दृष्टि किसी बड़े अस्पताल को दे दीजिए। जिन महान आत्माओं को अंग चाहिए उन्हें तुरंत रोपित हो जाएँगे। जिन अधम आत्माओं को परलोक वासी हो जाना चाहिए था, उन्हें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। डॉक्टर टेक्नॉलॉजी की जड़ तक पहुँच सकेंगे और मृत व्यक्ति के भी दिल धड़काते हुए फोटो बता सकेंगे। प्रभु विचारते रहे कुछ बोले नहीं। प्रभु कुछ बोलते तो डॉक्टर उनकी दिव्य दृष्टि निकाल कर दिव्य बिल के साथ किसी योग्य बड़े को रोपित कर देते।

प्रभु के आशीर्वादी स्वरूप से मैं बोर हो चुका था। इच्छा हुई कहूँ, नाथ आप खुद से ही पूछें कि क्या इन उद्देश्यों के लिए आपने सृष्टि की रचना की थी। मैं कह नहीं पाया, डिप्लोमैटिक बन गया। दिमाग को समझा दिया कि प्रभु अन्तर्यामी हैं, बिना बताए भी सब जान जाएँगे।

प्रभु कहने लगे- यदा यदा हि धर्मस्य। मैंने बीच में टोकते हुए कहा- प्रभु आप को अवतार लेने की जरूरत नहीं है। धर्म की इतनी प्रतिष्ठा तो रामराज्य में भी नहीं रही होगी। वैसे भी अपनी दिव्यता के प्रकाश में आप कुछ देख नहीं पा रहे हैं। आप यह दिव्य दृष्टि व्यंग्यकार को दे दीजिये। आप के राज में इतना पतित घट रहा है कि...

'नालायक', प्रभु ने कहा और वे अंतर्ध्यान हो गए। मैं समझ गया, सच सामने आए तो अंतर्ध्यान हो जाना ही प्रभुता है।

चुनाव के बसंत में

हे सखि, आधुनिक बसंत के आगमन की सूचना है, चुनाव आने वाले हैं। मालियों ने गली-गली, द्वार-द्वार तोरण बाँधना शुरू कर दिए हैं, यथासमय यहाँ फूल-हार लटकेंगे। इसी पथ से वीर गुजरेंगे और मातृभूमि की सेवा में अपने विरोधियों के शीश चढ़ा देंगे। हे सखि, दिग-दिगंत में रंगों की बहार फैली है, अबीर-गुलाल उड़ रहे हैं। सारा आकाश केशरिया, लाल, पीले हरे और काले झंडों से अटा पड़ा है। लोग सफेद, लाल और काली टोपियाँ पहने नगाड़ों की थाप पर मदमस्त नाच रहे हैं। हे सखि बिन मौसम बसंत जैसा लगे तो तय मान लो यह चुनावी बसंत है, जनतंत्र का बसंत है। यह आम लोगों के लिए खुशियाँ ले कर आता है, किसी के लिए दाम, किसी के लिए जाम, किसी के लिए भत्ता, किसी के लिए सत्ता। अब समुद्र और नदियों की जगह सड़कों और अखबारों में लहरें उठेंगी और देश प्रजातंत्र के उत्सव का विशाल नाटक देखेगा।

हे सखि, मैं संकेत भाँपने में विशेषज्ञ हूँ। पांच पकवानों की मिश्रित सुवास आ रही हो तो ससुराल से भूतों का आना तय है। घर में खाली डिब्बों से संगीतमयी लहरें उठें तो मन चहक उठता है, भाई-बंधुओं के आने की सूचना है। पुलिस की सायरन बजाती गाड़ी घर-आँगन रुके तो लगता है सम्पादक जी ने मेरा व्यंग्य मुखपृष्ठ पर छाप दिया है। पड़ोसी के घर से एम्बुलेंस के सायरन की ध्वनि उठे तो यह सिद्ध होता है कि साहित्य में मारक क्षमता अभी शेष है। पर सखि वातावरण में ऐसे संकेत नहीं है। इन दिनों अपरिचित भी गलबाहें फैलाए दौड़े चले आ रहे हैं। शालीन और भव्य दिख रहे लोग आ कर मेरे चरण छूते हैं, मामा, दादा, काका जैसा आत्मीय रिश्ता बनाते हैं। ये लोग मुझे देवता तुल्य लगते हैं, जब मेरा काम पड़ता है गायब हो जाते हैं।

मुझे देवता देखे लगभग पाँच साल हो गए, मैं तो भूल ही गया था कैसे दिखते हैं देवता। मैं उनके दर्शन करने कई बार संसद मंदिर गया, वे नहीं मिले। द्वारपाल ने कहा, दक्षिणा लाए हो तो मुझे दे दो। चढ़ावा लाए हो तो यहाँ चढ़ा दो और मोबाइल नंबर लिख दो। देवता फ्री हो जायेंगे तो तुम्हें कॉल कर देंगे। उन्होंने कभी कॉल नहीं किया। वे आज अचानक फ्री हो गए और मेरे आँगन में प्रकट हो गए। सखि धन्य है यह बसंत, चिर-काल चले यह बसंत। बस चुनाव की घोषणा हो जाए पर चुनाव न हो। ऐसा हो तो जनता का भाव ऊँचा रहता है, उसकी प्रजातंत्र में आस्था बनी रहती है। उसे मालूम है कि बसंत गुजरने के बाद फिर हिंस्त्र और लठैतों के दिन लौट आयेंगे।

इस बसंत में वे बैठे नहीं रह सकते, इसलिए खड़े हो गए हैं। ये नई तरह की कबड्डी है। खिलाड़ी कबड्डी-कबड्डी करते दूसरे खेमे में जाते हैं तो लौट कर नहीं आते। उन्हें कोई नहीं पकड़ता, तो भी वे उनके चरणों में गिर जाते हैं। वहाँ टिकट पा लेते हैं तब उठते हैं। कल तक जो उन पर थू-थू कर रहे थे, अब उनकी जय-जयकर कर रहे हैं। जो इस पाले में हैं वे सब उनके प्रिय बन गए हैं। सखि इस पाले के पास सत्ता का चुंबक है, जो इसके चुंबकीय क्षेत्र में आता है, चिपक जाता है।

समंदर में लहरें उठ रही हैं, निर्दलियों की नौकाएँ पलट रही हैं, जातिवादियों के जहाज मस्तूल कबाड़ रहे हैं। विकासवादियों के जंगी बेड़ों ने पतवारें डाल दी हैं और मछलियाँ पकड़ रहे हैं। भाषणों में बिजली चमकती है और कड़कती है तो नागरिक घरों में घुस जाते हैं, सखि राजनेताओं को दंगा मचाने में क्या समय लगता है! वादों की झमाझम वर्षा हो रही है। वादों की बाढ़ आ गई है। नदियों ने तट-बंध तोड़ दिए हैं और वादे घर-घर में घुस रहे हैं। सखि, वादे ही इतनी तबाही मचा रहे हैं तो आगे क्या होगा!

दो प्रतिशत आबादी के पास अठानवे प्रतिशत दौलत है, यह समीकरण आज अप्रासंगिक लगता है। इस मौसम ने नया समीकरण बनाया है, दो प्रतिशत आबादी के पास दौलत हो तो क्या, अठानवे प्रतिशत आबादी के पास वोट हैं, वह चाहे तो अपनी ताकत दिखा सकती है। सखि राजनेता चाहते हैं, कामधेनु जनतंत्र के लिए जनता गरीब हो और गरीब बनी रहे, अन्यथा हर देश अमेरिका जैसा विकसित हो जाएगा। सखि तुमको क्या लगता है, इस बसंत के बाद प्रजातंत्र प्रजा के लिए होगा या मजे के लिए होगा!

सारा टैक्स जाता कहाँ है

मैं गणित में कमजोर हूँ पर मेरी सरकार गणित में महाकमजोर है। सरकार को गणित नहीं आता तो भी वह बड़े-बड़े जोड़ लगाती है। बिलियनों डॉलर के जोड़ लगाती है और उसमें हमेशा लोचा मारती है। पाँच-दस बिलियन तो घटाना ही भूल जाती है। फिर किसी दिन ऑडिटर जनरल की रिपोर्ट आती है, वे सरकार की पोल खोलते हैं। पोल खुलती है सरकार को शर्मिंदगी नहीं होती, दुनिया की अन्य सरकारों की तरह वह भी बेशर्म हो जाती है। उसके सीने में सैकड़ों राज दफन हैं, एक-दो लीक हो जाए तो उसे फर्क नहीं पड़ता। आजाद देश की जनता और प्रेस को इतना जानने का हक होना भी चाहिए। जब प्रेस ब्रेकिंग न्यूज चलाती है तब मिनिस्टर फॉरेन टूर पर होते हैं, इसलिए बजट विभाग का नन्हा-सा प्यादा तटस्थ भाव से बयान जारी कर देता है। 'इतनी बड़ी डेमोक्रेसी है, छोटी-मोटी गलतियाँ होती रहती हैं। फिर, ये गलती हमारी गलती नहीं है। जब विरोधी पार्टी की सरकार थी तो उन्होंने यह गड़बड़ मारी थी। ये उनका ही किया-धरा है।' सरकार पर दो ट्रिलियन डॉलर का कर्ज है, उसमें दस-बीस बिलियन बढ़ भी गए तो क्या! सरकार का सूत्र है- घर भाड़े, दुकान भाड़े, अपने बच्चे लड्डू झाड़े।

सरकार का गणित सरकार जाने पर मैं अपने गणित से बहुत डरता हूँ। गणित में सर जी ने हमें इक्वेशन हल करना सिखाया था। कितनी भी कठिन समीकरण हो अंत में जा कर बराबर हो जाती थी। दस बराबर दस। असल जिंदगी में कभी कोई इक्वेशन बराबर नहीं हुई। मेरी इनकम का पलड़ा हमेशा ऊपर उठा रहा और खर्चे का पलड़ा नीचे झुका रहा। मैं इस दृश्य को एकटक देखता रहा हूँ। मेरी सरकार भी यही करती है, हमेशा घाटे में रहती है पर ढंग से खाती-पीती है और मौज करती है। दूध की कीमत एक डॉलर प्रति बैग बढ़ जाए तो सरकार

डीजल की कीमत एक सेंट प्रति लीटर कम कर देती है। पोलिटिक्स, इकॉनॉमिक्स का कितना अच्छा बैंड बजा सकती है आप इस उदाहरण से समझ सकते हैं। आँकड़ों के ऐसे जादू-मंतर से वह तीन-चार साल तंदुरुस्त रह लेती है तो बाकी का जुगाड़ ऑटोमेटिक हो जाता है। मैं भी अपनी सरकार की घाटा नीति फॉलो करता हूँ। डेमोक्रेसी वाला प्रजातंत्र हो तो सब ऐसे ही ठाठ से रहते हैं। बड़ी-बड़ी घोषणाएँ फेंके जाओ, नए-नए नोट छापे जाओ और जी लो अपनी जिंदगी।

सरकार की नकल करते-करते मेरा घाटा खूब बढ़ गया तो पिछले हफ्ते मैंने हिसाब लगाया। मैं पैंतीस परसेंट इनकम टैक्स देता हूँ, तेरह प्रतिशत जीएसटी (एचएसटी), सात प्रतिशत से अधिक पेंशन प्लान में और छः प्रतिशत मैचिंग अंशदान सरकार को सौंप देता हूँ। घर के लोन पर तीस प्रतिशत ईएमआई और कार की लीज पर बारह प्रतिशत बैंक ले लेता है। इसके ऊपर प्रॉपर्टी टैक्स और हेल्थ प्रीमियम भी देता हूँ। आपका गणित अच्छा हो तो जोड़ लगाना और मुझे ख़र्चे का टोटल बताना, क्योंकि सरकार अब भी कह रही है जनता को पैसे बचाना चाहिए। आपका गणित मेरे जैसा या मेरी सरकार जैसा कमजोर हो तो हिसाब लगाने की जरूरत नहीं है। मेरी और मेरे देश दोनों की नियति घाटे में चलना है। खाने-पीने और कपड़ों का खर्च मैंने कभी अपनी जेब से दिया नहीं। ये सब खर्चे मेरे क्रेडिट कार्ड वाले देते हैं। मैं उनका मिनिमम पेमेंट करता रहता हूँ और वे लिमिट बढ़ाते रहते हैं।

बावजूद इस सबके हमारी अर्थव्यवस्था दुनिया की टॉप अर्थव्यवस्थाओं में गिनी जाती है। दिवालिया लोग हमेशा सोसायटी में टॉप माने जाते हैं। काम-धंधे न हों, सारे देश में बर्फ फैली हो तो भी शरणार्थियों के जत्थे के जत्थे हमारे देश में घुसे चले आते हैं। सरकार बाँहे फैलाए उनका स्वागत करती है और कहती है, चलो तुम हमारा वोट बैंक बढ़ाओ। कर्मचारी यूनियनें कहती हैं- ऐ सरकार तनख्वाह बढ़ाओ। अस्पताल कहते हैं बिस्तरों की तादाद बढ़ाने के लिए पैसा दो। पुलिस और मिलेट्री वाले अपनी यूनिफार्म उतारने के बाद गोपनीय तरीके से सरकार से ज्यादा पैसा मांगते हैं। स्कूल वाले खुले आम रोते-रोते कहते हैं और पैसा लाओ। सबको पैसा चाहिए। एक दोस्त ने मुझसे पूछा- 'हम ख़ुद घाटा सह-सह कर इतना टैक्स देते हैं, ये सारा पैसा जाता कहाँ हैं। हमारी सरकार इतना टैक्स लेकर भी घाटे में चलती है।' मैंने यही बात मिनिस्टर से पूछी। वे तब से हँस रहे हैं और हँसे जा रहे हैं। प्रजातंत्र में यही होता है, आम जनता और देश परिणाम भुगतते हैं और राजनेता ऐश करते हैं।

वीर रस का व्यंग्यकार

कई सालों बाद गाँव लौटा हूँ, यहाँ भले कोई परिचित नहीं बचा पर अपरिचित लोग भी मिलने आ जाते हैं। अपरिचित लोग मीठा बोलते हैं, और धीरे-धीरे अपनी जड़ें बनाते हैं। परिचय घनिष्ठता में बदल पाए तब टाँग खिंचाई शुरू होती है। ये तीनों लोग जो मेरी तरफ आ रहे थे 'ब्रांड न्यू' थे। पहले मिले होते तो बेशरम होते; इतना तो हर कोई मुझसे एक मुलाकात में सीख लेता है।

"जे राम जी की भैया, आप यहीं मिल गए" पहले सज्जन बोले। मुझे लगा, मैं उन्हें यहाँ नहीं मिलता तो वे मुझे ढूँढते टोरंटो आ जाते। मैंने कहा- "हाँ, कुछ दिन यहीं हूँ, आप बिराजिए।" वे सब एक दूसरे को बिठाते हुए बैठ गए। परस्पर समझ हो तो फायदा पूरी टीम को मिलता है।

दूसरे सज्जन शुरू हुए- "आप विदेश में रहते हैं, पर हिन्दी बोलते हैं।"

'हाँ, वहाँ जिन्हें हिन्दी आती है, वे हिन्दी बोलते हैं, बाकी अंग्रेजी बोलते हैं।'

"अपने यहाँ जिन्हें हिन्दी आती है, वे अंग्रेजी बोलते हैं। जिनको अंग्रेजी नहीं आती उनसे तो वे अंग्रेजी में ही बोलते हैं। हमको क्या, हम अपनी कहते हैं वे अपनी।" हम लोगों में सद्‌भावना इतनी ठूँसी हुई है कि सही भावना अंदर ही सुलगती रहती है।

"हमने सुना है, आप कविता करते हैं" तीसरा हाथ जोड़ कर बोला।

आज तक किसी ने इतने आदर भाव से नहीं पूछा कि मैं कविता लिखता हूँ। इतना आदर पाकर मेरे रोम-रोम से कविता बाहर आना चाह रही थी, पर मैं

आदमी बना रहा, एकदम कवि नहीं बना। मैंने विनम्रता से कहा– “जी मैं व्यंग्य लिखता हूँ।”

“हमें वीर रस वाला चाहिए” वे बोले।

मेरा रचनाकार मन बेताब था। रचना पाठ किए बहुत महीने चढ़ गए थे। इसलिए मैंने कह दिया– “जी, मैं वीर रस का व्यंग्यकार हूँ। कुछ अर्ज करूँ?”

मेरे वचन सुन कर तीनों मेरे पाँव छूने लगे। मुझे लगा उन्होंने कई व्यंग्यकार देखे होंगे, पर वीर रस का व्यंग्यकार नहीं देखा होगा।

“आप कल ही अर्ज करना सबके साथ। आज तो आपने हमारी लाज रख ली, अपने गाँव की लाज रख ली। कल कवि सम्मलेन है और आज ठेकेदार कविराज का फोन आया कि उनके वीर रस के कवि को चिकनगुनिया हो गया है। उन्होंने कहा कि आपके गाँव में कोई वीर रस का कवि हो तो उसको श्रीफल दे कर रोका कर लो।” उन्होंने थैली में से श्रीफल निकाला और मेरे हाथ में रख दिया।

इच्छा हुई, उनसे पूछूँ कि शाल कब मिलेगी। शाल नहीं तो दुशाला ओढ़ा दें, मंच पर कल फोटो खींचे तो कुछ सम्मान जैसा लगना चाहिए। कनाडा लौट कर बताने में प्रतिष्ठा बढ़ेगी कि भारत में लोगों ने बिना पैसे लिए सम्मान कर दिया। मैं और विनम्र हो गया, श्रीफल से भगवान प्रसन्न हो जाते हैं, मैं तो मनुष्य हूँ, मेरी आत्मा और आत्मीय बन रही थी। मैंने पूछा– कल कहाँ आना है और कब?

‘टेकरी पर पशु मेला भरा है, वहीं आना है, सब कवि शाम को वहीं भरेंगे।’

‘आप पशु मेले में कवि सम्मलेन भरते हैं? मैंने आश्चर्य से पूछा।

‘वहीं भरते हैं। मेले में हर साल बहुत पशु आते हैं। आप तो पहली बार आ रहे हैं।’

वे रुके, शायद कहना चाह रहे थे कि कविता सुनते हुए आदमी भाग सकता है; पशु सो सकता है पर भाग नहीं सकता। वह नारायण प्रिय नंदी है, टिकाऊ श्रोता है। पर वे ऐसा कुछ नहीं बोले, उन्होंने उत्साहित हो कर कहा–

"हमारे मेले में इस बार पशु राज्य मंत्री आ रहे हैं।"

"अच्छी बात है, अब तक आदमी पशु हुआ करता था, अब पशु भी राज्य मंत्री होते हैं।"

'ना भैया, राज्य मंत्री तो आदमी ही होते हैं, पशु को राजनीति थोड़े ही आती है।'

मुझे अपने सामान्य ज्ञान के स्टेटस पर खेद हुआ। कुछ दिनों पहले प्रदेश सरकार से नाराज पाँच बाबाओं ने नर्मदा की परिक्रमा शुरू करने की घोषणा की तो सरकार डर गई। उसने पुण्य काम के लिए पाँच बाबाओं को एक साथ राज्य मंत्री बना दिया। साधु बाबा राज्य मंत्री होते हैं तो राज्य मंत्री पशु कैसे हो सकते हैं? मैंने सुधार करते हुए कहा– 'अच्छा, तो जो बड़े मंत्री हैं, वे पशु हैं।'

'जेई समझ लो' वे गुस्सा करते हुए बोले।

मैं उनके भोलेपन पर हँस दिया तो हम सब ठहाके लगाने लगे। वे बोले 'बड़ी ठिठोली करते हो यार'। अब मैं भैया से यार बन गया था। अपने श्रोता बेतक़ल्लुफ हो जाएँ तो सुनने-सुनाने में मजा आ जाता है। बहुरिया ने भीतर से चाय भिजवा दी थी। सवेरे से यह मेरी दसवीं चाय थी। अंग्रेजों का आभार कि वे कप में चाय पीना सिखा गए, वरना परदादा लोटे में चाय पीते थे। दस लोटे चाय भारी पड़ जाती।

"आप पशु मेले में कवि सम्मलेन क्यों करवाते हैं? कवियों के ये दिन आ गए कि पशुओं को कविता सुनाना पड़ती है।"

"अरे यार, बादशाह तुगलक के जमाने से पशु मेले में कवि सम्मेलन हो रहे हैं। लोग दिन में पशु देखते हैं रात को कवि। दिन में मवेशी की खरीदी-बिक्री होती है, रात को मनोरंजन हो जाता है। अपने इलाके के मवेशी बचपन से ही कविता का आनंद ले रहे हैं। उनकी परवाह मत करो। आप तो वीर रस का माल तैयार रखो।"

'जी ठीक है, मेले में कौन-कौन से पशु आते हैं?' मैंने अपन ज्ञान अद्यतन करने के हिसाब से पूछा।

'सब तरह के आते हैं, मुर्रा भैंसें होती हैं, नागौरी बैल होते हैं, खच्चर, घोड़े, ऊँट, साँड सब।'

“साँड कौन खरीदता है भला! साँड तो खुले घूमते रहते हैं।”

“वे दिन गए, अब सरकार खुद साँड खरीदती है।”

‘क्यों, सरकार के पास साँड कम हैं क्या?’

“आप ठेठ विदेशी ठहरे। मेले में सैकड़ों विदेशी आते है। ओढ़नी, चूनर, घाघरे, चूड़ियाँ सब खरीदते हैं। हम उनके साथ खड़े हो कर सेल्फी लेते हैं, वे मवेशियों के साथ सेल्फी लेते हैं। मवेशी आप लोगों के लिए अजूबा है। आप क्या जानों साँड। भारत में सरकार हर गाँव में एक साँड रखती है।”

‘मैं तो समझता था कि हर गाँव में एक सरपंच होता है।’

“ऐल्लो, सरपंच जी क्या साँड से कम होवे है।” एक निवेदक बोले तो दूसरे ने बात आगे बढ़ाई। “क्या लपेट के मारते हो भैया। बस कल वीर रस की कुछ सुना दइयो।”

‘पक्का, वीर रस की सुन कर पशु तो नहीं फड़केंगे, पर लोग फड़क गए तो?’

“लोग सोमरस पी के ना फड़के तो वीर रस सुन के कुछ ना होनो। आप तो सुना दीजो। जानवर को का समझ में आवे है?”

‘तो मेले में आदमी को समझ में आता है।’ मैंने उत्सुकता से पूछा।

इस बार बड़ी जोर का ठहाका लगा। भैया ने खैनी निकाल ली और चूना मलने लगे। कहने लगे, तुम परदेसी भले हो गए, पर ये मिला के देने की गाँवड़ेली नहीं छोड़ी। मैं अब वीर रस में व्यंग्य लिख रहा हूँ, सोच रहा हूँ किससे शुरू करूँ उत्तरी कोरिया के किम जोंग से या चहेते ट्रंप से।

साहब का दिमाग

विश्वभर में व्याप्त 'साहब' दुनिया का सबसे गौरव पूर्ण शब्द है। साहब की एक खोपड़ी में कई दिमाग ठसाठस भरे होते हैं। कहीं की नस कहीं असामान्य ढंग से फिट हो जाती है, इसलिए वे अलग तरीके से सोचते हैं। उन्हें बात-बात पर मीटिंग करने का शौक होता है। मीटिंग करने से उनका दिमाग मुखर हो जाता है। मीटिंग में उनके मुखारविंद से भाषण ऐसे झरते हैं, जैसे नदी से कोई झरना। वे लोगों को देखते ही पहचान जाते हैं कि वह मुफ्तखोर है या दुधारू। मुफ्तखोर उनके लिए जयकारा बुलवाते हैं, और दुधारू उन्हें माल दिलवाते हैं।

साहब अनुशासन के पर्याय हैं। भरी हंडी में एक चावल दबाने से सारे चावलों की औकात पता लग जाती है, वैसे ही साहब एक कर्मचारी का टेंटुआ दबा कर सारे महकमे को उसकी और अपनी औकात बता देते हैं। जितनी बड़ी टेबल हो, घुमावदार कुर्सी की जितनी मोटी गद्दी हो, जितनी प्रतीक्षा के बाद उनसे मुलाकात हो, वे उतने बड़े साहब होते हैं। जितने बड़े साहब होते हैं, उतना ही कबाड़ी उनका दिमाग होता है। वे काम कम करते हैं, बातें ज्यादा करते हैं और दिखावा उससे भी ज्यादा करते हैं। वे काम करवाने में उस्ताद हैं, कितना भी कठिन काम हो चुटकियों में करवा देते हैं और यदि उनका खब्ती दिमाग अड़ जाए तो वे किसी का भी बेड़ा गर्क करवा सकते हैं।

साहब पारस पत्थर जैसे गुणी हैं। उनके साथ रहते-रहते उनका ड्रायवर परमज्ञानी बन जाता है। वह साहब की नस-नस जानता है। एक दिन साहब को पेट में दर्द उठा, वे बड़े बेचैन हो रहे थे। ड्राइवर को बुलाया और उससे कहा चलो। ड्राइवर उन्हें अस्पताल नहीं ले गया। पास के काउंटी ऑफिस (टप्पा कार्यालय)

में उन्हें दौरे पर ले गया। साहब की दिव्य दृष्टि जहाँ पड़ती, गलती निकल आती। साहब ने छोटे अफसर को बहुत झाड़ा। एक हफ्ते से किसी को झाड़ा नहीं था तो अजीर्ण हो रहा था। नायब और उसके बाबुओं को बेवजह डाँट पिलाते-पिलाते उनकी बेचैनी दूर हो गई। ड्राइवर बताने लगा, पिछली बार साहब को भयंकर पेट दर्द हुआ था, एक बाबू को सस्पेंड किया तब कहीं अजीर्ण ठीक हुआ।

साहब पेट ठीक कर आए और अपने चैंबर में हँसते-हँसते घुस गए। उनका सहायक आया और बहुत सारी डाक रख गया, वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने घर फोन लगवाया। पत्नी से बात की, बच्चों से बात की। दामाद आ गए थे तो उनसे और बेटी से बात की। उन्होंने नौकर को भी नहीं छोड़ा, उससे घर-गृहस्थी की बात की। सबसे कहा वे बहुत बिजी हैं। वे खुद को बिजी न बतायें तो लोग उन्हें महाफुरसतिया समझ लें। फोन रख कर उन्होंने डाक को दो बराबर थप्पों में बाँटा, जैसे ताश की गड्डी के ढेर बना रहे हों। फिर उन्होंने डिप्टी क को बुलाया, उसे दूसरे डिप्टी ख की फाइलें चेक करने दीं और डाक का एक ढेर चपरासी के हाथ डिप्टी क के कमरे में भेज दिया। चपरासी की सेवा पा कर डिप्टी क धन्य हो गया, उसकी चाल में अकड़ आ गई। फिर उन्होंने दूसरे डिप्टी ख को बुलाया, पहले डिप्टी क पर बहुतेरे कटाक्ष मारे और उसकी फाइलों का ढेर इस डिप्टी ख को थमा दिया। डाक का दूसरा ढेर चपरासी डिप्टी ख के कमरे में पटक आया। यूँ सारी डाक का निबटारा हो गया और दोनों डिप्टियों की समीक्षा हो गई। ऐसे कुशल प्रशासन के लिए उन्हें राष्ट्रपति पदक मिला था। वे दोनों डिप्टियों की खामियाँ मुझे गिनाने लगे। साहब को अपनी भूमिका की चिंता नहीं थी, वे अपने डिप्टियों की भूमिका को ले कर चिंतित थे। देश-विदेश के सारे साहब उनके प्रशासन का सूत्र अपना रहे हैं और देखिए अपना देश तरक्की कर रहा है।

साहब का कद मातहतों से बनता है। उन्हें रात-दिन फाइलों को भाड़ में झोंकना पड़ता है। डिप्टी और असिस्टेंट न हों तो साहब भड़भूंजे लगते हैं। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। दो डिप्टी हों तो वे गंगा नहा लेते हैं। अपने साहब को अच्छा साहब बनने के लिए कान्वेंट संस्कृति में पढ़ा-लिखा और देसी संस्कृति में पला-बढ़ा होना चाहिए। हमारे यहाँ शुद्ध देसी आदमी साहब नहीं बन सकता, वह घिसते-घिसते प्रमोशन पा कर डिप्टी बन सकता है। कान्वेंटी आदमी भले सीधे

डिप्टी बन जाए, साहब बनने में उसकी एड़ियाँ घिस जाती हैं। साहब बनने के लिए आदमी को हायब्रिड होना चाहिए, कान्वेंटी और देसी संस्कृति का हायब्रिड। शोषित आये तो उन्हें पुकारने की करुणा उसमें हो, और शासक कहे तो उन्हीं शोषितों का इनकाउंटर करा सकने का उसमें जोश हो। अपना साहब वही हो सकता है जो ऐसा बहुरुपिया हो सकता है, जो मुँह में राम और बगल में छुरी एक साथ रख सकता है।

अपने साहब की सबसे बड़ी योग्यता है काम टालना और ऊपर से दबाव आये तो तदर्थ रूप से रातों–रात काम निबटा देना। एक दिन मैं नीतियाँ बनाने वाले 'एक्जीक्यूटिव' के पास बैठा था। वे हर साल आने वाली बाढ़ पर चिंतन कर रहे थे। उनका अदना अफसर आया और बोला, 'सर बाढ़ रोकने के लिए मेरे पास स्थायी योजना है।' साहब बहुत नाराज हुए और बोले, 'तुम स्थायी रूप से बाढ़ रोक दोगे तो हमारे पास इतने इंजीनियर हैं उनका क्या अचार डालोगे। हर साल मुख्यमंत्री जी ऊपर से पैकेट टपकाते हैं और नीचे आ कर करोड़ों का प्रधानमंत्री राहत कोष पाते हैं, वह कहाँ से लाओगे। तुमको तो तुम्हारा मासिक वेतन मिल जाएगा, हम जो सैकड़ों छुट भैय्यों को पालते–पोसते हैं, उनका फंड कहाँ से लाओगे? तुम स्थायी हल खोज कर प्रजातंत्र का गला घोंट दोगे। हमेशा ऐसा सोचो कि कुछ बड़ा और भयानक घटे, पीड़ितों को ज्यादा से ज्यादा मुआवजा मिले। राजनीतिज्ञों को काम दिलाने की, राजनीति को सफल बनाने की जिम्मेदारी हमारी है।'

सच है राजनीति और नौकरशाही में आपसी समझदारी हो तो प्रजा को टोपी पहनाना सरल हो जाता है। साहब के इतने दूरदर्शी दिमाग की प्रशंसा हमेशा होना चाहिए। धन्य है साहब का दिमाग, साहब नहीं होते तो प्रजातंत्र में न कोई राजा होता और न कोई प्रजा होती, दुनिया अजायबघर बन गई होती।

मैं किसे वोट दूँ?

गधे जमीन पर लोट-लोट कर टिकट पा गये हैं, वे अब खड़े हो गए हैं। जन्मजात तो वे सफेदचक थे, अब राजनीति में सन-सन कर मटिया गए हैं। बोलने जाते हैं तो सिर्फ एक ही वाक्य बोलते हैं। चींपो-चींपो। चींपो-चींपो का हिंदी में अर्थ होता है मुझे वोट दो, मुझे वोट दो। मैं असमंजस में हूँ, किसे वोट दूँ, मेरा वोट अमूल्य है, मुझे अपने देश के लिए वोट देना है, फिर मैं गधे को वोट कैसे दे दूँ। धोबी के गधे का क्या भरोसा ना वह अपने संसदीय क्षेत्र का होता है ना अपने दल का। जहाँ ज्यादा हरी-हरी घास दिखी वहाँ मुँह मारने लगता है। पद का आकर्षण देख कर कहता है 'मी टू'। इन्हें वोट देने के पहले सोचना पड़ेगा।

अभी जो सदल-बल खींसे निपोरते आए थे, वह बाहुबली हैं। हिंदी में आदर देने की शालीन परंपरा है, जिन्हें गुंडा कहना चाहिए हम उन्हें बाहुबली कहते हैं। महिलाओं और बच्चों को छोड़िये, नौजवान और पुलिस वाले भी उनसे खौफ खाते हैं। जज साहब कोर्ट के बाहर उन्हें नमन करते हैं। भयंकर आपराधिक रिकॉर्ड है पर सबूत नहीं है, दोष सिद्धि नहीं है, इसलिए जेल में सज़ा भोगने की बजाय वे संसद में बैठकर सारे देश को सज़ा देते हैं। वे भी टिकट पा गए हैं, कई छुटभैय्ये दलों से उन्होंने अपने लिए समर्थन ख़रीद लिया है, अब उनकी मंशा प्रजातंत्र को ख़रीदने और देश को बेचने की है। मेरे पास आज मौका है, मैं उन्हें उनकी औकात बता दूँ या उनके रौब में अपनी आजादी बेच दूँ। इन्हें वोट देने के पहले सोचना पड़ेगा।

अभी जो हेलीपैड पर अपना हेलीकॉप्टर टपका कर जमीन पर उतरे हैं, वे बाहरी राजनेता हैं। एक बार धन इन्वेस्ट करते हैं फिर पाँच साल कमाते हैं। वे

पुनः-पुनः पार्टी में इन्वेस्ट करते हैं। पार्टी यहाँ का टिकट इन्हें बेच देती है। पार्टी बताती है यहाँ तीस प्रतिशत दलित हैं, दस प्रतिशत अल्पसंख्यक हैं, पाँच प्रतिशत ठाकुर हैं, पाँच प्रतिशत कान्यकुब्जी हैं। इनकी पार्टी ने देश को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट दिया है। फूट डालो और राज करो का फंडा इन्हें अंग्रेज बेच कर गए हैं। देश इनके लिए धंधा है, इन्हें वोट देने के पहले भी सोचना पड़ेगा।

नित नए स्वाँग रच कर बहुरूपिया आ रहे हैं, अपनी ठगी से लुभा रहे हैं। इन्होंने सरकारी खजाने से सारे प्रांत को जंगल बना दिया, शेर कम बजट में बन रहे थे तो बड़े-बड़े बजट से हाथी बनवा दिए। वहाँ कमिशन ज़्यादा था। वे कह रहे हैं, जनता को हाथी देखने की बहुत इच्छा होती है। उनका बस चले तो सारे देश में हाथी ही हाथी लगवा दें। एक प्रांत में हाथी बनवा कर पाँच साल में उनकी पूंजी पाँच हजार करोड़ हो गई, सारे देश में हाथी छा गए तो उनके महल में सोने के हाथी लग जाएँगे। उनके बनाये हाथी मद में पागल हो कर लोगों को रौंदे चले जा रहे है। महावत को जन्मदिन के उपहार समेटने से ही फुर्सत नहीं है। चुनावी दंगल के समय पहलवान बनने वालों से सावधान रहने की जरूरत है।

यह जो हाथ जोड़े, मुस्कुराते, फूल-मालाओं से लदी जीप पर सवार शहजादे निकले हैं, बहुत रईस हैं। हर चीज ख़रीद सकते हैं, पैसा पानी की तरह बहा सकते हैं। चाँद से तारे तोड़कर ला सकते हैं, रोजगार नहीं हो तो मुफ्त में चार-छः हजार रुपया महीना दे सकते हैं, बस कुर्सी मिलना जरूरी है। इनकी बातों ने दशकों से मुझे सम्मोहित किया है। भ्रष्टाचार को उसके चरम पर पहुँचाने का श्रेय देशवासी इन्हें ही देते हैं। बिना पतवार के बहुत सारे दिशाहीन जहाज ये हर जगह दौड़ा रहे हैं। ये नहीं जानते, अपनी गरीब जनता को गप्पें मारने वाली जनता बनाने का सोच सामाजिक अपराध है। काश, इन्होंने रोजगार काम-धंधा और शिक्षा के सहारे गरीबों को तेजी से ऊपर उठाने की बात सोची होती। वे मुझे मुफ्त में पैसा देने का लालच देकर गरीबी की दलदल में फँसाये रखना चाहते हैं। निठल्ला बनने के लिए मैं ख़ुद को बेच दूँ।

यह जो लाव-लश्कर के साथ आ रहे हैं, बड़े जोश में हैं। हवा-हवा में मार कर रहे हैं पर जमीन की खबर नहीं रख रहे। किसान मरते हैं तो लाखों का मुआवजा दे देते हैं पर जिंदा किसान के लिए खाद-पानी-बीज के इंतजाम में

इनकी रूचि नहीं है। अरबपतियों का कालाधन जादू-मंतर से सफेद हो गया पर आम लोग दो-दो हजार लेने लाइनों में लगे रहे। महान राष्ट्र को सिर्फ बड़े उद्योगपतियों का ध्यान रखना आता है, छोटे व्यापारी कौन चंदा देते हैं। रिश्वतियों के मुँह बहुत चौड़े हो गए हैं पर राजनेताओं को अपने भोंपूओं से आता यशोगान भा रहा है। देश में इतना राष्ट्रवाद कभी नहीं रहा, यह बहुत अच्छी बात है। इसकी आड़ में ढेर सारे अंध-राष्ट्रवादी मैदान में घुस आए हैं। खुले विचारों वाले जनतांत्रिक देश में विरोध करने वाले अराजक घोषित हो जाते हैं। अति वर्षा में फसलें भी सड़ जाती हैं, अति-राष्ट्रवादी हमें कहाँ ले जायेगा।

हम अपने लिए एक-एक भिंडी छाँटते हैं, दागी आमों को अलग कर देते हैं, गदबदाए केलों को फेंक देते हैं। यह देश की बात है, अपना वोट जरूर दें, सोच-समझ कर सुपात्र को दें।

गाय पर दूसरा निबंध

बुनियादी शाला में पढ़ते हुए गाय पर मैंने पहला निबंध लिखा था– गाय हमारी माता है, आगे कुछ नहीं आता है। तब गुरूजी ने अंडा बनाते हुए लिखा था– बैल तुम्हारा बाप है, नंबर देना पाप है। गाय के संदर्भ में ये दो पंक्तियाँ स्कूली बच्चों को कंठस्थ हो गई थीं। पास होने के लिए मैंने गुरूजी द्वारा लिखवाया निबंध याद करते हुए उनसे पूछा था, गाय हमारी माता है तो उसकी हालत ऐसी क्यों है? वे क्या बोलते, साल में सिर्फ शिक्षक दिवस के दिन सम्मान पा कर शेष दिनों के लिए फिर बंधुआ मजदूर हो जाना उनकी नियति थी।

मैं आज पुनः गाय पर निबंध लिखना चाहता हूँ। गाय हमारे समाज के सोच का दर्पण है। उसकी हत्या होती है तो भारतीय संस्कृति की हत्या हो जाती है। गोमांस निर्यात किए जाने के लिए वह बूचड़खानों में कटती है और डॉलर कमा कर राजनेताओं की विदेश यात्राओं का प्रबंध करती है तो वह अर्थ व्यवस्था हो जाती है। गाय को चुनाव जीतने का हथकंडा बना हमारे राजनेता अपनी प्रगति की नींव डालते हैं, तब गाय राजनीति हो जाती है। असल में गाय प्रजातंत्र में प्रजा को मूर्ख बनाने का एक विश्वस्त मुहावरा है।

उन्नीस सौ सत्तर के दशक में नईदुनिया के तत्कालीन संपादक श्री राजेन्द्र माथुर ने लिखा था 'गाय तुम कविता थीं, धर्म हो गईं।' वे गाय के बहाने समूचे भारत पर व्यंग्य कर गए। वह धर्म है, पर मरियल है। वह चारा खाती है और उससे अपेक्षा दूध देने की है। उसे उसके बछड़ों का मुँह दिखा कर आदमी उसके थनों में दूध उतरवाता है, फिर उसे दोहता रहता है। चारा डालने का धर्म कर दूध दोहने का कर्म करना धर्मात्मा आदमी का सदियों पुराना शौक है। राजनेता के भेष

में आदमी और दो कदम आगे निकल गया है, वह चारा भी खा जाता है और वोट भी दोह लेता है। राजनीति ने आदमी को पशु बना दिया पर गाय पशु हो कर धर्म बन गई। वह धर्म बन कर पूज्य हो गई और आदमी धर्म के चक्कर में आसाराम बन गया।

जब चुनाव की हवा चलती है तो इंद्रधनुष के रंग साम्प्रदायिक हो जाते हैं और घायल गाय, माता बन जाती है। उसके पालनहार किसान के ख़ुद के खाने के लाले पड़े हैं। शर्म से जिन महाधीशों को आत्म हत्या कर लेना चाहिए थी, वे घुटन भरी दिल्ली की हवा में भी चैन की साँस ले रहे हैं। उनके हिसाब से किसान आत्म हत्या करता है तो प्रजातंत्र को सींचने के लिए रक्त मिल जाता है प्रजातंत्र और मजबूत हो जाता है। प्रजातंत्र कहने लगता है, अब हम आजाद हैं दलितों, तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आरक्षण दूंगा। तुम मुझे वोट दो, मैं तुम्हारी जान का मुआवजा दूंगा।

मुझे लगता है कृष्ण के समय गाय शिखर पर रही होगी, सत्ता की समीपता का सुख उसे उस काल में मिला होगा। तब ग्वालों और भावी द्वारकाधीश के बीच दोस्ती थी, वोटों का गणित नहीं था। कृष्ण लीला में कई पीढ़ियाँ गौ-भक्त हो गईं। इतनी सदियों में जितने गौ-भक्त बढ़े, गाय का शोषण उतना ही बढ़ गया। आम गाय ख़ुद कुपोषण की शिकार है, और हम उससे पौष्टिक दूध की उम्मीद करते हैं। भला हो खाद्य निरीक्षकों का कि भैंस के दूध में समान मात्रा में पानी मिलाने से बने घोल को वे गाय का दूध स्वीकार कर लेते हैं। बच्चों को रसायनों के बदले दूध तो मिल जाता है।

मैं आदिवासी जिले झाबुआ में पला-बढ़ा हूँ। वहाँ दीवाली के दूसरे दिन आदिवासी गाय-गौरी उत्सव मनाते हैं। दलित आदिवासियों की पीठ पर गायें बदहवास दौड़ती हैं। आदिवासी पटाखे छोड़ते हैं और अपने कुचले जाने का आनंद लेते हैं। अब यह उत्सव, दीवाली और झाबुआ जिले तक ही सीमित नहीं रहा, पूरे भारत में फैल गया है। जब जहाँ चाहा दलित को कुचल दिया और उत्सव मना लिया। आधुनिक राजनीति शास्त्र सिखाता है कि गाय जैसे निरीह पशु को कैसे उत्पीड़न का हथियार बनाया जाए। दलित-भक्षक जैसा नकारात्मक सम्बोधन देने की बजाय उसी काम के लिए गौ-रक्षक जैसा सम्मानीय अलंकरण देना अब गर्व

की बात है।

गाय करे भी तो क्या! गाय को उसका इतिहास नहीं मालूम। अच्छा है उसे नहीं मालूम कि वह कभी कामधेनु थी, कि कभी उसको बचाने के लिए गुरू वशिष्ठ के सौ पुत्र शहीद हो गए थे। अब तो वह वोटधेनु है, राजधेनु है और आज भी उसे कथित तौर पर बचाने के लिए सारे देश को जलाया जा सकता है। अब राजनीति के केंद्र में गाय को रख राजनेता उसे कभी रामपंथी बना देते हैं तो कभी वामपंथी। गाय ने राजपंथी बन प्रजातंत्र की फसल के लिए बहुत जैविक खाद दी है, कभी उसके खून के साथ अगड़ों का खून बहा है तो कभी पिछड़ों का।

कभी पर्यावरण और प्राणीमात्र हमारी संस्कृति का अंग हुआ करते थे। प्रकृति ने बिना किसी लिखित संविधान के प्राणीमात्र को समान अधिकार दिए थे, पर आदमी ने पढ़े-लिखे होने की साजिश रच अपने संविधान लिख डाले हैं। प्रकृति और मानवेतर प्राणियों का दोहन-शोषण करना उसे अपना मौलिक अधिकार लगता है। गाय को कभी मालूम नहीं होता कि वह संस्कृति पोषक है या संस्कृति विरोधी और कब उसे राजनीति साम्प्रदायिक घोषित कर देती है। जब धर्म का पतन होता दिखता है तो अब भगवान नहीं आते, कुछ लोग गाय का मुद्दा उछाल देते हैं। गाय जो कभी ग्रामीणों और दलितों की अर्थ व्यवस्था की रीढ़ हुआ करती थी, अब नारा बन गई है।

बचपन में मास्टरजी की छड़ियाँ खा-खा कर निबंध लिखा था, अब अपने होशो-हवास में लिख रहा हूँ। मास्टरजी तो रहे नहीं, आप ही पढ़ कर बताएँ कि यह कैसा लगा! निबंध के अंत में उपसंहार लिखा जाता था, अब उपसंहार प्रासंगिक नहीं होगा। उपसंहार से 'उप' हटा देता हूँ, अब संहार शेष है, गाय का या हमारा।

एक सम्पादक का आत्म-कथ्य

मैं हर तरह का संपादक रहा हूँ, इसलिए आत्म-कथ्य लिख रहा हूँ। सुधि पाठकों का मैं आभारी हूँ कि वे संपादक को महाज्ञाता समझते हैं, मोबाइल विश्वकोश समझते हैं और गूगल के सर्च इंजिन का आदिम संस्करण समझते हैं। पाठकों के दिमाग में संपादक की छबि, दुबले-पतले, दाढ़ी-धारी, चप्पल के साथ पैर घसीटते पुरुष की होती है। स्त्री-विमर्श के क्रान्तिकारी दौर में भी वे महिलाओं को संपादक के रूप में नहीं देखते। महिला अपने सामान्य रूप में सुन्दर मानी जाती है पर संपादक अपने असामान्य रूप में भी सुंदर नहीं होते।

साहित्यकार नहीं होते तो संपादक नहीं होता। जैसे आवश्यकता आविष्कार की जननी है, क्रिकेट अंपायर का जनक है, वैसे ही साहित्यकार, संपादक का जन्मदाता है। संपादक का सबसे ज़्यादा वक्त और दिमाग कवि खाते हैं। न हो तो भी खाते हैं। रोज की डाक और ई-मेल से संपादक के पास औसतन दो-तीन कहानियाँ, चार-पाँच लेख और तीन सौ से ज़्यादा कविताएँ आती हैं। यदि संपादक पर हर कविता पढ़ने की बाध्यता हो तो अधिकतर संपादक नोएडा की बजाय आगरा के आसपास दफ्तर खोल लें। सच कहूँ तो अपनी संपादकी में मैंने कभी कोई कविता पूरी नहीं पढ़ी। चावल का एक दाना देख कर ज्यों कुशल गृहिणी निष्कर्ष निकालती है, कविता का एक शब्द पढ़ कर कुशल संपादक सारा माजरा समझ जाता है। हमारे अधिकांश संपादक इस पैमाने पर कुशल संपादक हैं। दिन भर में जो साहित्य आता है उस पर चीन का भारी प्रभाव होता है। माल देखने में आकर्षक है, सस्ता है, पर घटिया है। योग्य चीजों को रि-सायकल करने की समृद्ध परम्परा जो इक्कीसवीं सदी में चली है, साहित्यकार उसमें खूब योगदान दे

रहे हैं। जम कर रि–सायकल करते हैं और बेचारे गरीब संपादक के सिर पर दे मारते हैं। कहते हैं, ले पढ़, और पढ़, पढ़–पढ़ के कितना पढ़ेगा। पढ़ने में लिखने जैसी 'कट–पेस्ट' तो है नहीं कि शरद जोशी के लेख से अदद माल उठाया और अपने नाम के नीचे चिपका दिया। 'रि–सायकल' साहित्य की भारी तादाद से कई संपादकों के चश्मे का नंबर दोगुना हो गया है। इससे बचने के लिए मैं घरेलू उपाय आजमाता रहा हूँ। आँख बंद कर रचना उठाओ, बंद नयनों से उसका सौंदर्य भाँपो और श्रीगणेशाय कह कर तीन में से किसी ढेर में डाल दो। आगे विघ्नहर्ता जानें।

यह जो सबसे छोटा ढेर है वह अस्वीकृत रचनाओं का है। अस्वीकृत रचनाओं का ढेर छोटा है तो आप ख़ुश न हों, इसमें एक 'कैच' है। इनके रचनाकारों ने टिकट लगा लिफाफा साथ भेजा है, ये ई–मेल से नहीं आयीं। मेरे सहयोगी इन रचनाओं को मेरे हस्तलिखित नोट की फोटो प्रति के साथ सादर लौटा देते हैं। नोट में मैंने लिखा है 'आपकी रचना अति सुन्दर है, विवशता के कारण लौटा रहा हूँ। आपकी उत्कृष्ट रचनाओं की इसी तरह प्रतीक्षा रहेगी।' यहाँ 'इसी तरह' का भावार्थ 'टिकट लगा लिफाफा' है। सुधी पाठक चिंता न करें, प्रतिभावान लेखक मेरा आशय समझते हैं।

दूसरा ढेर जो मध्य में है, वह बीच की स्थिति में है। न इधर–न उधर। इनमें से कुछ रचनाकार अल्प विख्यात हैं या तीन–चार बार अस्वीकृति की प्रतीक्षा से गुजर चुके हैं। मैं चाहता हूँ, सहायक संपादक उनकी रचना देखें और योग्य पाएँ तो सहयोगी संपादक को आगे बढ़ाएँ। तीसरा जो सबसे बड़ा ढेर है, ढुल–मुल हो रहा है, ठीक से जम भी नहीं पा रहा है। ये प्रथमदृष्टया अस्वीकृत रचनाएँ हैं, इनके साथ वापसी टिकट भी नहीं हैं। लेखक ही इन्हें वापस नहीं चाहता तो, इसमें संपादक का क्या दोष? तुलसी ने स्पष्ट कहा है 'समरथ को नही दोष गुसाईं'। अब आप यह न पूछिए कि स्वीकृत रचनाओं का ढेर कहाँ है? यह बड़ा गोपनीय मामला है, स्वीकृत रचनायें ढेर नहीं होतीं। आप एक लीटर दूध गर्म करें तो कितनी मलाई मिलती है?

मैं हर तरह का संपादक रहा हूँ। जैसे ककड़ी, लौकी, तुरई, भिंडी, परवल आदि प्रकार का। जितनी बड़ी साइज, उतना कम प्रति किलो मूल्य। जैसे पद है प्रधान संपादक। मतलब, दो–चार पेज के साप्ताहिक अखबार का सब कुछ; मालिक, खबरची, प्रूफरीडर, विज्ञापन व विपणन प्रबंधक। मान लीजिये, किसी का पद हुआ कार्यकारी संपादक, मतलब असल संपादक कोई और है, पर

संपादक का कार्य 'वह' करता है। पति, पत्नी, और वह में जो स्थिति 'वह' की है, वैसी ही स्थिति कार्यकारी संपादक की होती है। सहयोगी संपादक और कार्यकारी संपादक पर्यायवाची हैं। आप यह न पूछें पर्यायवाची संपादक क्या होता है। जो है, सो है।

जैसे महँगी स्टेटस सब्जियाँ खास मेहमानों के आने पर बनती हैं, वैसे ही संपादकों की एक खास प्रजाति है अतिथि संपादक। अतिथि संपादक देवता तुल्य होता है। अतिथि देवो भव। वह शौचालय में सोचता है, और घर से विशेषांक निकलता है। वह अपने सब मित्र लेखकों को सूचित करता है कि वह फलाँ-फलाँ परियोजना के लिए अतिथि संपादक है। आपकी रचना छपने की लगभग गारंटी है, यह मौका मत छोड़ो। अतिथि संपादक बनना भाग्योदय जैसा है। मेरा भाग्योदय हुआ है। इस पद से सम्मानित होते ही मैंने सभी ख्यात सम्पादकों (जिन्होंने मेरी रचना बिना पढ़े ही अस्वीकृत कर दी) को भाव-विभोर हो आमंत्रित किया 'आप हमारे लिए लिखेंगे तो, हमारे आयोजन की शोभा बढ़ेगी, आपकी रचना का प्रकाशन कर हम धन्य होंगे।' तब से वे भी मुझे धन्य करने लगे हैं।

मैं तो वैतनिक संपादक ही रहा, जब वेतन मिला टैक्स कटा दिया। पर मेरे एक मित्र अवैतनिक संपादक बनते हैं। वे वेतन नहीं लेते, कुछ और लेते हैं। वे खुले आम छापते हैं कि वे अवैतनिक संपादक हैं। कल से लघुपत्रिका वाले उनकी छुट्टी कर दें तो उन्हें कोई मलाल नहीं। वे इतनी सारी रचनाएं स्वीकृत कर जाते हैं कि साल-दो साल पत्रिका नई रचनाओं के अभाव में भी छप सकती है।

अपने शुरूआती दिनों में मैं सहायक संपादक भी रहा हूँ। जैसे दफ्तर में बड़े बाबू की स्थिति है, सहायक संपादक उसका साहित्यिक प्रतिबिम्ब है। वह हमेशा कागजों से लदा रहता है। उसे धोबी का गधा कह लो। (अब यहाँ धोबी का तात्पर्य आप समझ लें।) वह गंदा-शंदा सब लाद कर ले जाता है, और धो-धा कर ले आता है। मैं पूरे होशो-हवास से कह सकता हूँ कि समूचे साहित्य और पत्रकारिता की नींव का पत्थर सहायक संपादक ही है। जो प्रतिष्ठान सहायक संपादक नहीं रखते, वे संपादक का शोषण करते हैं। वे प्रशिक्षु संपादक रखते हैं, मुफ्त में रखते हैं और उसमें संपादक की आहूति दे डालते हैं।

पर संपादकी का जो आनंद मैंने सलाहकार संपादक बन कर पाया वह वर्णनातीत है। गद्‌गद् कर देने वाला है। बड़ी-बड़ी स्मारिकाओं और विशाल अभिनन्दन ग्रंथों में सलाहकार का पद पाना सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक है। कम

से कम विमोचन समारोहों में मंचासीन हो कर श्रोताओं का विशाल हुजूम देख पाने का यह दुर्लभ अवसर है। मैं ऐसा कोई भी प्रस्ताव नहीं छोड़ता। और यदि ऐसा प्रस्ताव न मिले तो मुझे उँगली टेढ़ी करना आता है। सलाहकार संपादक बनने का मोह मुझे कई कारणों से है। प्रथमतः इसमें कोई काम नहीं करना पड़ता, बस दो-चार मीटिंगों में हाजरी देनी होती है और 'रेडीमेड' सुझाव रखने होते हैं। दूसरा, मानदेय, मार्ग-व्यय और प्रतिष्ठा जो इसमें है वह किसी और संपादकी में नहीं है। सलाहकार संपादक हाथी दाँत की तरह होता है और उसे योग्य संपादक ऐसे ही सुशोभित रखते हैं।

दैनिक अखबार के संपादक बनने के कई प्रस्ताव मुझे मिलते हैं। यह सबसे निकृष्ट कोटि की संपादकी है। एक बार मैंने ऐसा प्रस्ताव मुफलिसी में स्वीकार कर लिया था। शाम छः बजे तरोताजा विषय पर संपादकीय लिखा और रात ग्यारह बजे मुख पृष्ठ की साज-सज्जा और 'हेड-लाइन्स' देख घर आ कर भरपूर नींद सो गया। सुबह दस बजे से वकीलों के फोन आने लगे। धमकियाँ मिलने लगीं। 'हमारे क्लाईट की मानहानि हुई है, उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा है।' मैंने उन्हें विनम्रतापूर्वक कहा- आप माफीनामा भेज दीजिये, आगे मैं देख लूँगा। वे कहने लगे आपने गलत छापा, आप माफी माँगिए। मैंने उन्हें समझाते हुए कहा- 'मैं माफी माँगने से कहाँ इंकार कर रहा हूँ। आप मेरे नाम से माफीनामा लिख भेजिए, मैं उचित कार्यवाही करूँगा। वकील साहब मेरी बात समझ ही नहीं पाए। वे अड़े रहे तो मैंने अपनी बात फिर से समझाई। 'भाई साहब, मैं संपादक हूँ, मैं ओरिजनल नहीं लिखता हूँ। लोग लिखते हैं, मैं उसे देख लेता हूँ। मैं बार-बार यही कह रहा हूँ, आप माफीनामा लिख भेजिए, मैं देख लूंगा। उस दिन से हमने 'शोक-समाचार' कॉलम के पास 'भूल-सुधार' कॉलम भी जोड़ दिया।

इन दिनों मैं एक साहित्यिक त्रैमासिकी का संपादक हूँ। कोई राजनेता चुनाव हार जाये और मंत्री पद न मिले तो जीवन-यापन के लाले पड़ जाते हैं। तब कोई सरकारी-अर्धसरकारी निगम के अध्यक्ष का पद तारणहार लगता है। ऐसे ही डूबते को तिनके का सहारा है त्रैमासिकी की संपादकी। पर मेरा मन आज बड़ा विचलित है। एक कवि ने चिठ्ठी भेजी है, 'संपादकजी, आप मेरी रचना अपनी सम्माननीय स्तरीय पत्रिका में नहीं छापे तो कोई बात नहीं, मैं पत्रिका में दीमक बन कर छप लूँगा।' जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि। यदि ऐसे कवि वाकई दीमक बन कर चिपक गये तो मेरी पत्रिका चट कर जाएँगे।

चौदह हजार करोड़ रुपये घर बैठे ले लो

प्रतापी भारत भूमि पर चौदह हजार करोड़ रुपये का घपला हुए बहुत दिन हो गए। नासमझ जनता बुदबुदाने लगी है। वह समझने लगी है कि कहीं खिचड़ी पकी है। खाने वालों की पांचों उँगलियाँ घी में हैं। वे सपरिवार देश छोड़ कर परदेसी हो गये हैं। हमेशा की तरह घपलेबाज भाग गए हैं। सरकार भागे हुए भूत की लंगोटी जब्त कर रही है। अकर्मण्यता का अभिनन्दन होना चाहिए, पर विपक्षी सरकार से बचकाना सवाल पूछ रहे हैं– 'इतना बड़ा स्कैम कैसे हुआ, हमें भी बताओ।' उनके दल में ही कई विशेषज्ञ हैं, उनसे ही ज्ञान ले लेते कि इतना बड़ा स्कैम कैसे होता है।

हर नई सरकार पुरानी सरकार से ऐसे कौशल सीखती है। बोफोर्स हुआ, हर्षद मेहता कांड हुआ, टू जी घपला हुआ, और कोयले की दलाली जैसे घपले हुए। तब किसी विपक्षी ने ऐसे नहीं पूछा कि हमको बताओ, इतना बड़ा स्कैम कैसे किया। वे ऑटोमेटिक सीख गए। उन्होंने विजय माल्या पैदा किया, नीरव हीरे वाले को तराशा और नया रिकॉर्ड बनाया। चौदह हजार करोड़ रुपये। ऐसे रिकॉर्ड बनाना कितना सरल है, सचिन को चौदह हजार रन ठोकने में उम्र लग गई, नीरव हीरे वाला कुछ सालों में ही चौदह हजार करोड़ रुपये की पारी खेल गया।

सरकार दिन भर काम करती है। जो काम दिन में नहीं हो पाते, उन्हें रात में करती है। जब वह काम करते–करते ऊब जाती है तो बाहर झाँकती है। देखती है, कहाँ रिकॉर्ड ब्रेकिंग घपला हुआ। फिर सारे नेता खुदाई में लग जाते हैं ताकि कुछ नाम हो, पार्टी फंड में इजाफा हो, अगला चुनाव जीतने के लिए कुछ दाना–पानी और मुद्दे मिले।

पर इस बार मैं विपक्षी राजनेता से सहमत हूँ। जनता को मालूम होना चाहिए कि इतना बड़ा स्कैम कैसे होता है। लोग दो-चार लाख रुपये का घपला करते-करते थक चुके हैं। अफसरों को दो-चार लाख की रिश्वत मांगते शर्म आती है। मुद्रास्फीति बढ़ी है, उसी अनुपात में सब रेट बढ़े हैं। अब मानक ऊँचे हो गए हैं। माल्या रो रहा है कि इस महान गंगा के देश से बस नौ हजार करोड़ ही साफ कर पाया, धिक्कार है मुझे। यह नीरव हीरे वाला सरलता से चौदह हजार करोड़ रुपये साफ कर गया। आप कहेंगे मैं बार-बार 'नीरव हीरे वाला' क्यों लिख रहा हूँ, साफ-साफ नीरव मोदी क्यों नहीं लिख रहा। हर मामले में मोदी जी की टांग खींचना साहित्य नहीं है। देश में लाखों मोदी हैं, ललित मोदी है, पर चाय वाला नरेंद्र मोदी एक ही है। इसलिए घपलेबाज नीरव मोदी से उसका मोदी सरनेम छीन लेना चाहिए। ऐसा करने से अमेरिकी डेटा बेस में मोदी नाम से सर्च करने पर कोई गलत सन्देश नहीं आएगा और नरेंद्र मोदी जी को अमेरिकी वीसा मिलने में परेशानी नहीं होगी।

भारत की जनता बहुत भोली है। पाँच साल तक धैर्य से इंतजार करती है। भारत सरकार कई दिनों से धन इकठ्ठा कर रही थी। उसका पक्का इरादा था, हर भारतीय के बैंक खाते में पंद्रह लाख रुपये नकद डालना। इसी बीच माल्या नौ हजार करोड़ ले भागा। नीरव मोदी ने चौदह हजार करोड़ रुपये की चपत लगा दी। विक्रम कोठारी ने पहली डकार चार हजार करोड़ रुपये पर ली है। सरकार सबको लखपति बनाना चाहती है, पर अरबपति सारा धन शालीनता से लूट रहे हैं। सरकारी लोग सोच रहे हैं, सरकार से बाहर रह कर हराम की कमाई का स्कोप करोड़ों में है। चारा कांड करने की बजाय डंके की चोट विदेशी बैंकों में करोड़ों रुपये भेज दो और भाग जाओ। भागते रहो, चौरवेति-भागवेति।

लोग घपलों का ठीकरा बैंकों पर फोड़ रहे हैं। यह सरासर गलत है। हमारे बैंक चकाचक, पाक-साफ हैं। बस उनके कर्मचारी नालायक हैं। वे मुसीबत के वक्त लोगों को चार-छः घंटे कतारों में खड़ा रखते हैं, और दो-चार हजार रुपये नकद दे कर भगा देते हैं। यह लोगों की गलती है कि वे बाबू लोगों के पास जाते हैं, और दो-चार हजार रुपए मांगते हैं। लोग हजार करोड़ की एलओयू या लोन माँगते तो बैंक के बड़े-बड़े अधिकारी उन्हें पासवर्ड दे देते। कहते- 'लो, चौदह

हजार करोड़ रुपये घर बैठे ले लो, पासपोर्ट बनवाओ और फॉरेन'। लाइन में लगना तो दूर, बैंक आने की जरूरत ही नहीं है। सब डिजिटल है।

भोलेभाले जनप्रिय राजनेता ने मासूम प्रश्न दागा है। 'सरकार, हमें भी बताओ, इतना बड़ा स्कैम कैसे हुआ।' स्कैम में बताने जैसा क्या है! यह देव भूमि है, जो कर सकता है, वह कर लेता है। सदियों पहले अंग्रेजों ने एक कंपनी बनाई, नाम रखा ईस्ट इंडिया कंपनी। फिर उन्होंने अपनी योग्यता के हिसाब से स्कैम शुरू किया। पहले कुछ रियासतें हड़पीं, धीरे-धीरे पूरा भारत हड़प गए। देखते-देखते दुनिया के कई देश अपनी जेब में डाल लिए। लोगों की भाषा पर कब्जा कर लिया, लोगों के दिमाग पर कब्जा कर लिया। कितना बड़ा स्कैम हो गया! सोने की चिड़िया भारत का सोना इंग्लैंड चला गया, कोहिनूर हीरा इंग्लैंड चला गया। हमें तब भी पता नहीं चला कि बड़ा स्कैम हो गया। अब ललित मोदी और माल्या इंग्लैंड भाग गये, नीरव मोदी अमेरीका भाग गया, तो हम गुनगुना रहे हैं- स्कैम हो गया, नया गेम हो गया।

आर्थिक विश्लेषकों ने चिंतन करते-करते अपने बाल नोच डाले हैं, अब अपना गंजा सिर खुजा रहे हैं। पत्रकार अपने खबरचियों को दुत्कार रहे हैं। स्टिंग ऑपरेशन कर-करके वे छोटे-छोटे भंडाफोड़ कर पाए हैं। महान्यायपलिका संज्ञान ले-लेकर भी दिल्ली की आबो-हवा साफ नहीं करा पाई है। सारा देश पशोपेश में है, पर बेफिक्र है। यह सदियों से चल रहा है और चलता रहेगा। कल और बड़ा स्कैम सामने आएगा। यह हमारी परम्परा है, संस्कृति है। जियो और जीने दो, खाओ और खाने दो, कुछ सोचो और चौदह हजार करोड़ रुपये घर बैठे ले लो।

एक व्यंग्यकार का शोधपत्र

भूमिका : एक लब्ध प्रतिष्ठित पत्रिका के सम्पादक ने मुझसे एक शोधपत्र लिखने का आग्रह किया। मैं क्या, कोई भी रचनाकार संपादक के गच्चे में फँस जाए, और माँग के अनुसार लिख डाले। सो, मैंने अपने जीवन का पहला शोधपत्र गालियों पर लिखा। जरा आप पढ़ लें, फिर मैं 'विष विद्यालय' के संपादक को भेज देता हूँ।

प्राक्कथन : भारतीय संस्कृति कबाड़े की दुकान है। तमाम जंग लगी संस्कृतियाँ यहाँ मौजूद हैं। हम मोहन जोदड़ो के बहाने पुरानी सभ्यताएँ खोदते हैं और वर्तमान को कालपात्र में गाड़ देते हैं। पिछले दिनों अपने अतीत की खुदाई करते हुए मुझे लगा, हमारे जीन्स में गालियों के डीएनए स्वत: आ जाते हैं। अक्षर ज्ञान हो न हो गाली-ज्ञान बचपन में ही आ जाता है। बिना गुरू के और बिना पाठ्य पुस्तकों के ही गालियाँ आ जाती हैं। गाली-ज्ञान सहज ज्ञान है। निश्चित ही गाली साहित्य के पहले प्रतिष्ठित हुई होगी। इसलिए मैं गाली पर शोध प्रबंध लिख रहा हूँ। यह शोधपत्र इसी महत् कार्य का सारांश है।

गाली का उद्‌भव : मुझे गालियाँ खाने और खिलाने का पैंसठ साल लम्बा अनुभव है। इस आधार पर मैं गाली के उद्‌भव को समझाने के लिए मौलिक कथा प्रस्तुत कर रहा हूँ। बात आदम-हव्वा याकि मनु और श्रद्धा के जमाने की है। तब संसार सागर हो गया था। न मैं था, न चार्ल्स डार्विन थे, न बंदर थे। मनु और श्रद्धा थे। रहने के लिए उन्होंने एक मकान बनाया। पशु बाँधने के लिए बाड़ा बनाया। बाड़े और घर को जोड़ने के लिए गली बनाई, वह गली जो दो प्रेमियों का जमा-उधार आज भी निपटाती है। मनु उन दिनों फिदा हुसैन थे। वे अपनी बाड़े वाली इड़ा बाई पर फिदा थे। वे उससे गली में गले मिलते थे। एक सुप्रसंग में इड़ा

बाई के कान की बजाय गाल लाल हो गए। तब लजाते हुए इड़ा बाई ने कहा– 'मैं वह हल्की–सी मसलन हूँ जो बनती गालों की लाली।' रसानुभूति से ओत–प्रोत मनु कभी इड़ा बाई में तो कभी शब्दों के सौंदर्य में खो जाते। उनका कवि मन हिलोरें लेने लगा। वे गली में थे, सामने गाल थे, उन पर लाली थी। उनके अंतर से तत्क्षण एक शब्द निकला 'गाली'। वे जोर–जोर से आर्किमिडीज की तरह चिल्लाने लगे– गाली, आह गाली, वाह गाली। उनकी पत्नी श्रद्धा भागी आई, उन्होंने मनु और इड़ा बाई को बँधे हाथों पकड़ लिया। आग्नेय मनु ने अपनी पत्नी श्रद्धा को घूरा और पहली गाली दे डाली। तबसे गाली सजती–धजती और घूंघरू की तरह बजती रही है। कालान्तर में मनु ने अपनी प्रिया का नाम इसी तर्ज पर साली रखा। वे जन्म–जन्मान्तर के लिए मानव जाति को रास्ता दिखा गए। इसलिए वे आज भी याद किये जाते हैं।

गाली की विकास यात्रा : विद्वानों ने अपने प्रबंधों में उत्पत्ति कथा के बाद विकास कथा कही है। यहाँ मैं उनका अनुकरण कर रहा हूँ। गाली से गालियों की विकास यात्रा बैलगाड़ी से रॉकेट तक की विकास कथा जैसी है। तब बैठे–ठाले मनु और श्रद्धा ने उत्पादन शुरू किया। उन दिनों आदमी कुटीर उद्योग में बनता था, इसलिए उत्पादन कम था। कुछ शताब्दियों बाद यह कार्य लघु उद्योग में वर्गीकृत हुआ। अपने युग में तो यह वृहद उद्योग है, बड़े–बड़े शहरों की छोटी–छोटी जगहों में मानवीय कारखाने लगे हैं। प्रारम्भ में एक ही गाली थी। आबादी के विस्तार के साथ हर तरह के रोष को एक ही गाली से व्यक्त करना कठिन हो गया। अप्रतिभाशाली लोग राज–दरबार में प्रशस्ति गान रच रहे थे तब प्रतिभाशाली लोगों ने सड़कों पर गालियों की रचना की। जैसे–जैसे साहित्य बढ़ा, गालियाँ बढ़ीं। कारोबार बढ़ा, तो गालियों का लेन–देन बढ़ा। भारत से चली गालियों का संसार की तमाम भाषाओं और बोलियों में अनुवाद होने लगा।

गालियाँ पराक्रम की अभिव्यक्ति हैं, इसलिए इनका स्थायी भाव लड़ाई है। इतिहास गवाह है, द्रौपदी का शब्द–बाण पहले चला, फिर महाभारत युद्ध हुआ। सदियों से शब्द युद्ध पहले घर में लड़े जाते हैं तद्न्तर सड़क पर आते हैं। हमारी आर्थिक करंसी रुपया और सामाजिक करंसी गाली है। करंसी को भला कोई हेय दृष्टि से देखता है! गरीब हो या अमीर, गाली तो सभी की जीभ पर बैठती है। साहित्यरथी इसे शब्द बाण, शब्द युद्ध, कटाक्ष, तीखे बोल, अपशब्द

जैसे कितने ही चमकदार नाम दे दें, जो धार और मार गाली में है वह इसके परिष्कार में नहीं। कुछ भी कहें, लोगों को गालियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। इनके भारतीय मूल के कारण ये अहिंसक हैं पर जुझारू हैं। मुझे लगता है भारत को जगतगुरू का दर्जा वेद-पुराणों के लिए नहीं बल्कि गाली और शून्य के लिए मिला है।

गाली और साहित्य दो समानांतर विधाएँ हैं। साहित्य के नवरस की तरह मैं गालियों को भी नौ भागों में विभक्त करूँगा। समालोचक बंधु इस पर वाद-विवाद कर सकें इसलिए इन भागों को वाद कहना ठीक रहेगा। सीमित उदाहरण मूल शब्दों में हैं। इनमें उपसर्ग और प्रत्यय आवश्यकतानुसार लगते रहते हैं। यह प्रयोगवादी धारा है, आप कैसे भी संयोजन के लिए स्वतंत्र हैं। गालियों के प्रयोग से समझाए गए व्याकरण के कठिन नियम सहज ही दिमाग में घुस जाते हैं। इसके लिए आपको मेरी थीसिस पढ़नी होगी। प्रत्येक वाद के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

पुश्तेनीवाद : पीढ़ी दर पीढ़ी और खास रिश्तेदारों को लपेटती हुई गालियाँ। यथा- बाप-दादा, माँ-बहन-भाई, साला-साली। इनमें आप आगे वर्णित अन्य किसी भी वाद की गाली को जोड़ कर अधिक धारदार गाली बना सकते हैं। उदाहरण के लिए, तेरा भाई+जानवरवाद (गिरगिट), या तेरा भाई+कर्मवाद (डाकू)।

जानवरवाद : चार्ल्स डार्विन के सिद्धांत को आगे बढ़ाती हुई गालियाँ। यथा- ढोर, गधा-गधी, सुअर, कुत्ता-कुतिया। उल्लू, कौआ जैसे पक्षी। गिरगिट, मेंढक जैसे प्राणी और मच्छर, मकोड़े जैसे कीड़े। अपने दस दोस्तों को याद करिये, इनमें से बहुत-सी गालियाँ उनकी उपमा बन जाएगी और आपको गुदगुदाएगी।

जातिवाद : इन गालियों का उपयोग साम्प्रदायिकता भड़काने के लिए होता है। यथा- बामण, बनिया जैसी सूचित जातियाँ, कुछ अनुसूचित जातियों के नाम, कुछ जनजातियों के नाम। आप किसी सूचित जाति वाले को जनजातीय नाम से बुला कर देखिये, अपनी शव यात्रा की तैयारी करनी पड़ेगी। यह बहुत संवेदनशील वाद है। इस गाली का उपयोग वे ही लोग कर सकते हैं जो भीमराव अम्बेडकर और मंडल आयोग का नाम उछाल सकते हैं। इस वाद का नर्म स्वरूप व्यापक है। आम लोग पाकिस्तानी, बिहारी, बंगाली, गुजराती जैसे शब्दों से अपनी भड़ास निकाल लेते हैं।

माया-मृषा वाद : आप गलत समझ रहे हैं, यह बहनजी द्वारा चलाया गया वाद नहीं है। इस समूह में कंजूस, मक्खीचूस, बेईमान, बदमाश, पाजी जैसी शताब्दियों से प्रचलित गालियों ने मान्यता पाई है। इक्कीसवीं सदी में माल्या, दाऊद, भाई जैसी नई गालियों ने इस समूह की ऊपरी पायदान पर जगह बनायी है।

कर्मवाद : यह गाली एकदम निजी प्रवृत्ति पर चलाया गया तीर है। कुछ में हल्का उलाहना है तो कुछ में भारी आरोप। पहली पाँच गालियाँ तो मुझे पड़ती रहती हैं, पुलिस वालों के तरह मैं भी इन्हें चुपचाप पचा जाता हूँ। उदाहरण देखिए- बेवकूफ, मूर्ख, आलसी, डरपोक, हरामखोर। अन्य उदाहरण हैं- चोर-उचक्का, डाकू, नशेड़ी, जुआरी, चुड़ैल, छिनाल आदि। आप कहीं इनका वाक्यों में प्रयोग कर रहे हों तो सामने वाले से दो हाथ दूर रहने की सलाह दी जाती है।

विकृतिवाद : इनमें गाली-तत्व कम, उपहास अधिक है। शारीरिक विकृतियों का उपहास। इन गालियों का उपयोग कमजोर लोग, खुद से अधिक कमजोर पर करते हैं। यथा- काणा, बाड़ा, ढेरा, लूला, लंगड़ा, अंधा, कुबड़ा आदि।

प्रगतिवाद : आधुनिकता से प्रभावित गालियाँ ढेरों हैं। इनमें गालियों जैसा कुछ नहीं है। कवि को कवि कह दो तो सम्मान है, पर कविराज कह दो तो गाली है। पागल, कंडील, मास्टर, किंगकांग, खब्ती, सूरदास, गाँवड़ेल, असभ्य, आलू, टमाटर, गुलाब जामुन आदि इसी श्रेणी की गालियाँ हैं। जिसमें कविता जैसा कुछ नहीं हो, वह प्रगतिशील अकविता है। वैसे ही जिसमें गाली जैसा कुछ न हो पर कोई चिढ़ जाए तो वह प्रगतिशील गाली है। आप इसे अ-गाली भी कह सकते हैं।

राजनीतिवाद : रात-दिन रंग बदलतीं गालियाँ। ट्विटर पर ट्वीट होती गालियाँ। ये गालियाँ ब्रेकिंग न्यूज बन कर टीवी चैनलों पर छाई रहती हैं। मैं व्यंग्यकार हूँ, राजनीति की प्रवृत्तियों पर व्यंग्य करता हूँ, व्यक्ति पर नहीं। पर राजनैतिक गालियाँ बहुत व्यक्तिगत होती हैं। यहाँ प्रधानमंत्री को नीच कहने और उनके समकक्ष अप्रधानमंत्री को युवराज कहने में विसंगति है या गाली, मैं अभी तय नहीं कर पाया हूँ। पप्पू, दलाल, चमचा, आयाराम, गयाराम, दलबदलू, नेता, बोगस, चकाचक, शातिर आदि गालियों का राजनैतिक गलियारों में बड़ा महत्त्व

है। आजकल संविधान, कानून, असहिष्णु, दलित, अगड़ा, पिछड़ा आदि शब्द भी गाली बनते जा रहे हैं।

अंगवाद : यह स्व-विवेचित वाद है। इस वाद की गालियाँ बच्चों से बूढ़ों तक में समान रूप से लोकप्रिय हैं। सेंसर बोर्ड ने इसे 'ए' सर्टिफिकेट दे रखा है। रेलगाड़ी के शौचालयों व सार्वजनिक शंकालयों में इनका सचित्र वर्णन रहता है। इन्हें मैं कैसे लिखूँ? मैं लिख भी दूँगा तो सम्पादक छापेंगे नहीं, और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उन्होंने छाप भी दिया तो ये गालियाँ आप खुलेआम बकेंगे नहीं। असभ्य समाज को कुछ सभ्य बनाने का थोड़ा-सा जिम्मा आपका भी बनता है।

इस प्रबंध के द्वारा मैंने यह सिद्ध किया है कि गाली और आदमी चोली-दामन जैसे साथी हैं। गाली चाय-सी गर्म और लोकप्रिय है और गालियों का समुचित अध्ययन मनुष्य और मानव-समाज को समझने में सहायक होगा। सबसे बड़ी बात, भारत उनतीस राज्यों और आठ-नौ केंद्र शासित प्रदेशों वाला महादेश है। इन सबकी संस्कृतियाँ अलग और बहुरंगी हैं पर गालियाँ एक जैसी हैं। अनेकता में एकता की मिसाल है गाली। भारत को एकसूत्र में बाँधने का श्रेय हिंदी और गालियों को जाता है।

विश्वविद्यालयों से :

यह शोधपत्र गालियों में मेरी अनुपम विद्वत्ता का प्रमाण है। मेरे कौशल को आँकने के लिए विश्व विद्यालयों से मुहर बंद टेंडर आमंत्रित हैं। डॉक्टरेट की मानद डिग्री, सम्मानजनक स्वर्ण पदक, शाल-दुशाला और नकदी प्रकाशन ग्रांट वांछनीय है। स्वनाम धन्य विश्वविद्यालयों से निवेदन है कि जब भी वे डॉक्टरेट की खैरात बाँटे मुझे याद कर लें, गालियों से मैं उनका स्तर बढ़ा दूँगा। विज्ञ पाठक जानते हैं, विश्वविद्यालय लोगों को पकड़-पकड़ कर मानद डॉक्टरेट की रेवड़ी अर्पित करते हैं। मैं तो मेहनत कर रहा हूँ। लोगों ने हिंदी में स्नातकोत्तर करने के बाद विश्व विद्यालय को विश विद्यालय और विष विद्यालय लिख कर डॉक्टरेट प्राप्त की है। मैं तो मेहनत कर रहा हूँ, गालियों के उद्‌भव, विकास और अवदान पर शोध प्रबंध लिख रहा हूँ। इस शोध को मान्यता दे कर विश्व विद्यालय हिंदी साहित्य को समृद्ध करें।

अस मानुस की जात

मेरे पूर्वज बंदर नहीं हो सकते। हमारी सभ्यता का यह पहला डिजिटल युग है। जेब में मोबाइल है, कंधे पर लैपटॉप है, कानों पर ईयर फोन हैं, और कॉलर पर माइक लगा है। जहाँ ईश्वर नहीं है, वहाँ वाई-फाई है। हम सर्वज्ञ, सर्वगुण संपन्न मनुष्य हैं। सिर्फ वक्त की जरूरत हो तो गधे को बाप बनाते हैं। अन्यथा, हम हाथी पर बैठते हैं और शेर की खाल पर बैठ कर साधना करते हैं। देवताओं को भोग चढ़ा कर ख़ुश रखते हैं और भूत-पलितों से बचने के लिए डोरा बाँध कर रखते हैं। बंदरों में ऐसा कोई गुण नहीं है।

मैंने मनुष्य के बारे में थोड़ा और विचार किया है। धरती पर सकुशल रहने के लिए हमने जीवन बीमा और स्वास्थ्य बीमा ले रखा है। परलोक में स्थान पाने या अगला जन्म सुधारने के लिए पंडित रख रखे हैं। कितने ही मनुष्य भगवान बन गए हैं। जो योग्यता होते हुए भी भगवान नहीं बन पाए, उन्होंने ख़ुद को भगवान घोषित कर दिया है। कुछ तिहाड़ जैसी जेलों में भगवान बनने की परिवीक्षा पर हैं। बंदर ऐसा कुछ नहीं कर सकता। तब भला बंदर हमारा पूर्वज कैसे हो सकता है।

पिछले दिनों एक राजनेता वैज्ञानिक भी बन गए। राजनेता कुछ भी बन सकते हैं। सरकार की लुटिया डुबोनी हो तो जनतंत्र के रक्षक बन सकते हैं। वोट कबाड़ना हो तो हर बैंक खाते में पंद्रह लाख रुपये डालने का वादा कर सकते हैं। ये राजनेता लघु स्तर के मंत्री हैं तो चिंतक बन गए। उन्होंने कहा 'मनुष्य के पूर्वज बंदर नहीं थे, मनुष्य आदिकाल से मनुष्य ही रहा है।' यह बात एकदम सच है। यदि हमारे पूर्वज बंदर होते तो वे राजनीति कैसे करते। बंदर टोपी उछाल सकता है,

टोपी का रंग नहीं बदल सकता।

अब सारे विपक्षियों ने मोर्चा खोल दिया है। वे कह रहे हैं 'हमारे पूर्वज बंदर थे। असहिष्णु सरकार इतिहास बदलते-बदलते, विज्ञान भी बदलने लगी है।' ये विपक्षी सदा-सर्वदा बंदरों जैसा व्यवहार करते हैं। उनके पूर्वज निश्चित ही बंदर रहे होंगे। शेष विश्व के लोग ज्ञानी हैं, सरकार की हाँ में हाँ करते हैं। उनके पूर्वज आदि-आदि काल से मनुष्य रहे हैं, ऐसा आर्यों ने कहा है, वेदों ने कहा है, विशुद्ध भारतीय वैज्ञानिकों ने कहा है। हम मनुष्यों के डी एन ए की बंदरों से तुलना करना घोर अपमान की बात है। ये विज्ञान कैसा अंधविश्वासी है। बचपन में माँ गुस्से में कहती थी, तुम जानवर हो, जानवर से गये-गुजरे हो। गुस्से में कही गई बात क्या सच होती है भला!

आदमी के पूर्वज कौन हो सकते हैं, यह समझाने के लिए मैं आपको एक कथा सुनाता हूँ। दो विमान चालकों ने अपने विमान फुल-टैंक किये और न्यूयॉर्क के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर से जानबूझ कर टकरा दिए। ख़ुद मर गए और अन्य तीन हजार लोगों को मार डाला। मुंबई की होटल में कुछ लोग मशीनगनें चलाते घुस गए, सैकड़ों लोगों को मार डाला और ख़ुद भी मारे गए। ऐसी घटनाओं से सिद्ध होता है कि आदमी को दूसरे आदमियों को मारने में बड़ा आनंद आता है, भले ही वह ख़ुद मर जाये।

अब बंदरों का सोच देखें। वानरराज हनुमान की कथा हम सब जानते हैं। उन्होंने अपनी पूँछ में आग लगाई, और दानवों की लंका जला दी। बंदर हो कर उन्होंने बंदरों के जंगल में आग नहीं लगाई। यह हुई बुद्धि की बात, जय हनुमान ज्ञान गुण सागर। न ख़ुद मरे न किसी बंदर को मारा। वानरों के इस उपकार के कारण, मानव सभ्यता उनकी चिर ऋणी है। बदले में आदमी ने बंदर के लिए पिंजरे बनवाए और डुगडुगी पर नचाया। आदमी में बंदर के प्रति उदार भाव है ही नहीं। आदमी के पूर्वज बंदर होते तो क्या वह उनके प्रति इतना छिछला होता!

निर्ममता आदमी के खून में दौड़ती है। गैंगरेप करने में मानवीय प्रजाति का मुकाबला सृष्टि की कोई प्रजाति नहीं कर सकती। भगवान के घर के नीचे भीख मांगने वालों में जानवरों के मुकाबले आदमियों की संख्या ज़्यादा होती है। लोगों को अंधा या अपाहिज बना कर भीख मँगवाने का धंधा कोई जानवर या पक्षी

नहीं चलाते। धरती पर सर्वाधिक विष आदमी फैलाता है, फिर भी अपनी नस्ल को सुसभ्य और श्रेष्ठ मानता है। मृत्युशैया पर लेटे आदमी के अंग जिस द्रुतगति और कुशलता से डॉक्टरों के भेष में छुपा आदमी निकाल लेता है, उसके क्या कहने? आदमी के बारे में यह सब जानते हुए जानवरों की कोई भी प्रजाति क्यों कहने लगी कि वे आदमी के पूर्वज हैं।

यदि बंदर अंग्रेजी या हिन्दी बोल पाते तो चार्ल्स डार्विन से जरूर कहते कि डार्विन तुम झूठे हो। ऐसे आदमी के पूर्वज बंदर हो ही नहीं सकते। सच तो यही है कि आदमी का पूर्वज आदमी ही है, पर शर्म के मारे वह उसको अपनी संतान नहीं मान रहा।

हिन्दी के पाठक कहाँ हैं?

मेरे आसपास ढेरों हिन्दी प्रेमी हैं जो सिर्फ हिन्दी दिवस के दिन ही हिन्दी बोलते हैं, सोच-सोच कर। बाकी दिनों वे हिन्दी की ढपली बजाते हैं और कमा खाते हैं। कई मित्र तो रोमन लिपि पर इतने फिदा हैं कि देवनागरी में लिखने में उन्हें लज्जा आती है। देवनागरी में छोटी-बड़ी मात्राओं का भेद उन्हें समझ नहीं आता। नाचना नहीं आए तो आँगन को टेढ़ा कहने में ही बुद्धिमानी है। ऐसे में 'हिन्दी के पाठक कहाँ हैं?' यह मार्मिक प्रश्न, प्रकाशक लेखक से पूछ रहे हैं। बेचारा लेखक पाठकों के अते-पते क्या जाने! वह टीप-टीप कर लिखना जानता है, संपादकों के पते जानता है। और कुछ विज्ञ संपादक, प्रकाशकों के प्रतिष्ठान जानते हैं। सरकार पुस्तकालयों के लिए अलती-भलती किताबें ख़रीदती है। ऐसी किताबें कि कई तो लाइब्रेरी में आसीन होने के बाद उसकी चौखट पार नहीं कर पातीं। किताबों की सरकारी खरीद न हो तो नब्बे प्रतिशत प्रकाशक ही गायब हो जाएँ। इस सबके बावजूद, किसी साहित्यकार को नहीं मालूम कि पाठक कहाँ छिप कर बैठा है। क्यों छिप गया है और चाहता क्या है?

मैं हिन्दी भाषी राज्य का मूल निवासी हूँ। यहाँ मुख्यमंत्री जी को चीफ मिनिस्टर कहलाना पसंद है, पर रबर की सब मोहरें हिन्दी में हैं। यहाँ 'बंद निविदाएँ' सिर्फ हिन्दी में आमंत्रित की जाती हैं। मेरी दृढ़ मान्यता है कि यहाँ तो पाठक होना चाहिए। इसलिए मैंने अपने पड़ोसी जी से पूछा। कबीरदास जी ने कहा है निंदक नियरे राखिए। मेरे पड़ोसी सदाशिव जी मेरे एवं मेरे कवि मित्रों के सर्वकाल निंदक हैं। मैंने पूछा- सदाशिव जी, क्या आप हिन्दी के पाठक हैं? वे अचंभित रह गए। प्रश्नवाचक नजरों से उन्होंने प्रतिप्रश्न किया- 'आपकी तबियत

तो ठीक है न? मैंने आपका अखबार नहीं उठाया।' मैं चिंतन करने लगा। मेरी तबियत को क्या हो गया? कहीं सदाशिव जी को तो मतिभ्रम नहीं हो गया। वे मेरा सरल-सा प्रश्न नहीं समझ पाए। मैं कोई आयकर अधिकारी तो था नहीं जो उनकी आय का खुलासा पूछ रहा था। यदि वे पाठक नहीं हैं तो कह देते कि वे पाठक नहीं है। कई लोग हिन्दी में पीएच.डी. हैं, पर पाठक नहीं हैं, पाठक बनना तपस्या है। सदाशिव जी के सत्य कथन से भारतीय संस्कृति अपमानित थोड़े ही हो जाती। रही अखबार की बात, तो हमारा अखबार सबसे पहले वे ही पढ़ते हैं।

मैंने सदाशिव जी से अपने रिश्तों की सूक्ष्म पड़ताल की। कहीं कोई लोचा नहीं मिला। कोई कवि की निंदा करे तो क्या हुआ। हिन्दी के लेखक को किसी का बुरा नहीं मानना चाहिए। यहीं से तो उसे कुंठा और संत्रास जैसी अनुभूतियाँ होती हैं। यदि उसने भी बुरा मानना शुरू कर दिया तो वह क्या और किस पर लिखेगा, फिर तो मनुष्य का मनुष्य पर से विश्वास उठ जाएगा। सृष्टि में भगवान के बाद एक वह ही तो बचा है जो किसी चीज का बुरा नहीं मानता। कबीरदास जी महाकवि थे। वे बुरा ढूँढने निकले और उन्होंने कहा- 'बुरा जो देखन चला बुरा न मिलिया कोय। जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।' असल में कवि होना ही बुरा है।

मैं पाठक ढूँढने के अपने मिशन पर आगे बढ़ा। निर्विकार और निर्विचार चलते-चलते मैं गोपाल जी के पानालय पहुँच गया। यह बड़ी धर्मनिरपेक्ष और वर्गनिरपेक्ष जगह है। यहाँ छोटे से लेकर बड़े बिना भेदभाव के आते हैं, गोपाल जी सबको चूना लगाते हैं। गोपाल जी ने मुझे देखा तो वे मुस्कुरा दिए। उनके मुस्कुराने का अर्थ है गोपाल जी के दिमागी डेटाबेस में मेरे पान की रेसिपी दर्ज है। वे बड़े विनोदी हैं। सभी नियमित ग्राहकों से अनियमित संलाप करते हैं। मुझसे से भी करने लगे तो मैंने जिज्ञासा वश उनसे पूछ लिया- गोपाल जी हिन्दी के पाठक कहाँ हैं?

किमाम लगाते-लगाते उनकी उँगली रुक गई। उन्होंने पूछा- तम्बाकू बढ़ाऊँ क्या? 'ना, ना इतनी ठीक है।' मैंने अपना प्रश्न नहीं दोहराया। प्रश्न दोहराने का काम सिर्फ पत्नी ही करती है। जब तक उसे संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता, वह अलट-पलट कर प्रश्न का पोस्टमॉर्टम करती रहती है। मेरे और गोपाल जी के

बीच संबंध 'पान लबों की शान' तक ही सीमित हैं, इसलिए पोस्टमॉर्टम करना ठीक नहीं लगा। मुझे वहाँ से खिसकता देख गोपाल जी बोले– सर, अखबार बच जाए तो मैं पान बाँधने के काम ले लूँ, पर किताबें तो रद्दी वाले भी नहीं लेते। आप पाठकों की बात करते हैं।

हमेशा की तरह बस अड्डे पर आबादी में भारी वृद्धि के स्पष्ट संकेत मिल रहे थे। यहाँ किताबों की दुकान पर चहल-पहल रहती है। कवर पृष्ठ का मुआयना करते-करते कुछ लोग अखबार और पत्रिकाएँ ख़रीद भी लेते हैं। यहाँ के मालिक मिलन बाबू मेरे परिचित हैं। किसी अख़बार या पत्रिका में सम्पादक के नाम मेरा पत्र छपता है तो मैं उसकी एक प्रति जरूर खरीदता हूँ। लाइब्रेरी से अखबार चुराना किसी लेखक को शोभा नहीं देता। मिलन बाबू ने मुझे देख कर पूछा– आज कहाँ नाम छपा है?

मैंने कहा 'ना, ना, मैं सर्वे कर रहा हूँ कि हिन्दी के पाठक कहाँ हैं, आप इस पर कुछ प्रकाश डालें।'

वे बोले 'ठहरिए, टॉर्च ढूँढता हूँ', और खिलखिला दिए। जब भी उन्हें व्यंग्य करना होता है वे पहले ही खिलखिला लेते हैं। व्यंग्य ढंग से न बैठे तो कचरा हो जाता है। जी भर कर हँस लेने के बाद उन्होंने गंभीर हो कर कहा– "हम मनोरंजक किताबें ही रखते हैं। 'टेक्स्ट बुक्स' नहीं रखते।" मैं समझ नहीं पाया कि साहित्य कब से सिर्फ 'टेक्स्ट बुक्स' हो गया। पाठक कब 'टेक्स्ट बुक्स' के दायरे में आ गए? यहाँ एक नया विवाद और हो गया कि जो मनोरंजक किताबें पढ़ते हैं वे पाठक नहीं माने जाते!

सरकार ने भ्रष्टाचार उन्मूलन कार्यक्रम चलाया, भ्रष्टाचार तो बढ़ गया, पर पाठकों का उन्मूलन हो गया। अब, हिन्दी के कितने पाठक हो सकते हैं भला? यह जानने के लिए मैं एक जनगणना विशेषज्ञ से मिला। वे सब तरह के लोगों की गणना कर सकते हैं। गणना तो सीधा-सादा काम है, पर आँकड़ों से निष्कर्ष निकालने में दिमाग तेज होना चाहिए। उनका दिमाग, लेखक और कवि से भी तेज होना चाहिए। मेरा प्रश्न सुनते ही उन्होंने निष्कर्ष निकालना शुरू कर दिए। जैसे निष्कर्ष गन्ने का रस हो। प्रश्न दिमाग में डाला और उत्तर का रस टप, टपाटप।

वे निष्कर्ष बताने लगे। 'मोटे तौर पर हिन्दी भाषियों की कुल संख्या तीस

करोड़ ठहरी। यदि प्रति हजार, एक दशमलव एक व्यक्ति कवि-लेखक आदि हुए तो हिन्दी में तीन लाख जीवित कवि-लेखक हो सकते हैं। इंटरनेट के ब्लॉगों, अखबारों और लघु पत्रिकाओं की संख्या से भी इन आँकड़ों की पुष्टि होती है। अब तीन साहित्यकारों में से एक को भी ढंग से हिन्दी लिखना आता हो तो कम से कम एक लाख लोग हिन्दी के पेशेवर साहित्यकार ठहरे। बोलिये आप क्या बोलते हैं?"

मैं कैसे बोलता कि पेशेवर साहित्यकार दो सौ-तीन सौ होंगे। सामान्यतः, किसी साहित्यिक किताब का प्रथम संस्करण दो सौ-तीन सौ प्रतियों का छपता है तो भी किताबें गोदाम की शोभा बढ़ाती रहती हैं। साहित्यकार एक-दूसरे से विमर्श करते हैं कि तू मेरी पढ़, मैं तेरी पढ़ूँगा। गोष्ठियों से बाहर निकलने के बाद यह विमर्श उलट जाता है। अपने ग्रुप से बाहर का रचनाकार तो संचालक को दिखता ही नहीं है। तूने मेरी टाँग खीचीं, मै तेरी दोनों टाँगें खीचूँगा। लिखूँगा, तेरी किताब बकवास है। तेरा लिखा और लिखना सब बाहर निकाल दूँगा।

साहित्यकारों के अंतरंग दंगल से पाठकों का क्या लेना-देना। सांख्यिकीविद ने गणित किया- हिन्दी के पास एक लाख जीवित पेशेवर साहित्यकार हैं। इनमें से नब्बे हजार तो लब्ध प्रतिष्ठित ठहरे। उनके बहु-प्रचारित परिचय के हिसाब से वे महान लेखक हैं। उनकी रचनाएँ हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों में ठसाठस भरी जाना चाहिए। हर कवि का मानना है कि कबीर और तुलसीदास के बाद उनकी कविता हो। प्रेमचंद के बाद उनकी कहानी हो। फिर देखो हिन्दी के पाठक कैसे बढ़ते हैं। इकबाल ने बड़े गर्व से लिखा था- हिन्दी हैं, हम वतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा। आजादी के परवाने हिन्दी के दीवाने थे, वे हिन्दी को आंदोलन के केंद्र में रखते थे। अब आंदोलन का केंद्र कॉफी हाउस होता है। वहाँ का मेनू भी अंग्रेजी में होता है। हिन्दी पढ़ना-सुनना हो तो अब चाय के ठेले-ढाबे पर जाना होता है। पर हिन्दी के पाठक न कॉफी हाउस में हैं, न ठेले-ढाबे पर।

बेचारे साहित्यकारों को मालूम ही नहीं है कि कुछ दशकों से कान्वेंटी संस्कृति से सम्मोहित माँ-बापों ने हिन्दी के पाठक पैदा करना ही बंद कर दिए हैं। क्या गाँव, क्या शहर, सब जगह बच्चे अंग्रेजी रट रहे हैं, ताकि अब कभी अंग्रेजों को भारत आ कर राज करने की जरूरत न रहे, उनकी अंग्रेजी ही राज करती रहेगी।

भाई साहब की पद्मश्री

माननीय भाई साहब,

आपको पचहत्तरवें जन्म दिन की ढेरों बधाइयाँ। जीवेत शरद: शतम।

आपको सौ साल तो जीना ही पड़ेगा, आप पद्म पुरस्कार से बस अब तेईस–चौबीस साल ही दूर हैं। इन दिनों गृह मंत्रालय के गधों पर बहुत बोझ है। इस बार लगभग सोलह हजार फाइलें थीं, बेचारे लाद–लाद कर थक गए। मैं भी आपकी तीनों फाइलें लाद आया था, पद्मश्री, पद्मभीषण और पद्मविभीषण अलंकरण के लिए। गृह मंत्रालय ने साफ कह दिया था कि आप प्रवासी हैं, इसलिए आपको भारत–रत्न नहीं दिया जा सकता।

आप जानते ही हैं, सब्र का फल मीठा होता है; खट्टा आम पड़े–पड़े मीठा हो जाता है, सड़ जाए तो सड़ जाए। अनुशंसा समिति वाले यही कह रहे थे, सब्र करो, इस साल नहीं तो किसी अगले साल सही। पिछले साल बानवे वर्षीय डॉक्टर को पद्मश्री मिला था, इस साल बानवे वर्षीय संस्कृत सेवी को। आप नियमित योगा करते रहें, राष्ट्रीय भोजन खिचड़ी का सेवन करें, कैसे भी कर के बानवे तक खुद को खींच लें। आप को क्या बताऊँ, महात्मा गाँधी ने दादाश्री को बहुत निराश किया था। गाँधीवादी दादाश्री बिना कोई इंटरनेशनल संस्थान बनाए हर साल बापू का नामांकन नोबेल शांति पुरस्कार के लिए करते रहे। सन सैंतालीस के नोबेल के लिए तो बापू का नाम दूसरी बार शॉर्टलिस्ट हो गया था, पर बापू बीच में ही राम–राम कर गए। बापू का तो कुछ नहीं बिगड़ा, उनके लिए तो धोती का कटपीस बहुत था। पर बेचारी नोबेल कमेटी की इज्जत–आबरू खाक में मिल गई, दुनिया भर के लोग आज भी कमेटी की सामूहिक बुद्धि पर थू–थू करते हैं।

आप बीच में महाप्रयाण न कर देना, संसाधन मेरे लगे हैं। अपनी मातृभूमि की पद्म कमेटी पर थू-थू करना अच्छा नहीं लगेगा।

वैसे इस बार मैंने अनुशंसा समिति के करीबी से खोद-खोद कर पूछा; क्या लोचा हुआ, बंधुश्री का नाम कहाँ अटक गया। इस बार आप प्रार्थी के खाते में दो राष्ट्रीय और दो अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार और जुड़वा दिए थे। आपकी यशोगाथा पर संयोजित लम्पट वार्षिक पत्रिका का प्रवेशांक भी संलग्न किया था। आपकी पूर्व प्रकाशित पाँच पुस्तकों के पुनर्नियोजन से बीस पुस्तकें और बनवा दी थीं। आपके भेजे कुछ लाख रुपयों में बहुत-सा काम पक्का हो गया था। आप इन तुच्छ बातों का मलाल न करें। बस वहाँ साहित्य की और यहाँ साहित्येतर सेवा करते रहें। मेरे वित्तीय सलाहकार हमेशा दीर्घकालीन निवेश की सलाह देते हैं।

हाँ तो लोचे की बात करें, राजनीति बड़ी बाजारू चीज है, आप उसे समझें। जब सरकार सहिष्णु होती है, आप असहिष्णु हो जाते हैं। जब शर्मनिरपेक्ष सरकार आती है, आप गाय बन जाते हैं। जब प्रगतिशील हावी होते हैं, आप जनवादी बन जाते हैं। आप लेखक हैं, आपको लेखक की तरह ही होना चाहिए। आप राजनेताओं की तरह लोटा क्यों बन जाते हैं? लेखक का पैंदा होना चाहिए। लेखक का खूँटा होना चाहिए। लेखक अतिवरिष्ठ भी हो जाए तो उसे अपना खूँटा नहीं छोड़ना चाहिए।

आप एक बात सुन कर गद्‌गद् हो जाएँगे। पिछले साल राष्ट्रपति जी, कृष्णा जी सोबती को ज्ञानपीठ सम्मान देने आए। कृष्णा जी ने अपने भाषण में कहा- 'मैं तिरानबे बरस की हो रही हूँ। मेरा सुझाव है, यह सम्मान भारतीय भाषाओं के अतिवरिष्ठ लेखकों को दिए जाने की परिपाटी बदल कर उन लेखकों को दिया जाना चाहिए जो अपेक्षाकृत युवतर हैं।' राष्ट्रपति जी ने इस बात को गंभीरता से लिया है। ज्ञानपीठ और साहित्य अकादेमी भी अब ज्यादा जलील होना नहीं चाहते। आप पचहत्तर साल के हैं, आप युवतर हैं। आपकी संभावना बढ़ गई है, बस आप हिन्दी का खूँटा न छोड़ें।

मैं अपना पुराना सुझाव फिर दोहराना चाहता हूँ। आप एक बार स्वच्छ भारत में आ जाएँ। पुण्य भूमि पर कुछ पुण्य करें। चालीस-पचास ग्रामीण स्कूलों में मैं आपके भाषण हिन्दी में रखवा देता हूँ। वहाँ हिन्दी बोली-समझी जाती है।

आप विदेशी रेशमी कागज पर कुछ प्रमाण पत्र छपवा लाएँगे तो बच्चे खुश हो जाएँगे। मानें तो, मै दिल्ली में किसी समकक्ष संस्थान से मानद डॉक्टरेट दिलवा देता हूँ। आपकी तीनों फाइलें नई हो जाएँगी। गृह मंत्रालय पर थोड़ा दबाव बन जाएगा। आजकल मिनिस्टरों की अनुशंसाएँ नहीं चलती हैं। इसलिए होम वर्क करना जरूरी है। अपात्र लोग पात्र बन रहे हैं, तो आप जैसे सुपात्र लोगों को भी पात्र बनना पडेगा; थोड़ा नीचे गिरना होगा। गृह मंत्रालय की मिलेट्री विंग अलग है, वहाँ लोग सीना तान कर सम्मान पाते हैं। हमारा पाला तो नागरिक विंग से पड़ता है, पहले यहाँ सिर झुकाने पर सम्मान मिल जाता था, अब जब तक कमर नहीं झुक जाती यहाँ सम्मान नहीं मिलता।

मेरे दोस्त ने अपने गृहनगर में कुछ संस्थाएँ बनवाई हैं, सब कागज तैयार है; सरकारी भूमि अलॉट हो गई है, बस बिल्डिंग नहीं है। आपके नाम पर बिल्डिंग बन जाए तो फाइलों पर वजन पड़ जाएगा। भाभी जी को 'सम्पूर्ण ब्रह्मांड देवनागरी महासंघ' का संस्थापक अध्यक्ष बनने के लिए कोटिश: बधाइयाँ। वे सही रास्ते पर बढ़ रहीं हैं। मुझे आप दोनों को यह बताते हुए विशेष प्रसन्नता हो रही है कि आपकी बहू इस महासंघ की भारतीय अध्यक्ष बनने की स्वीकृति लिखवा रही है।

सादर, आपका अपना,

अनुज

वे इशारा दे कर चले गए

बिना जान-पहचान के लोग नमस्ते करने लगते हैं तो मेरा माथा संदेह से ठनकने लगता है। वे बिना सोर्स लगाए सरकारी कर्मचारियों से काम करवाने की हिम्मत कर लेते हैं। यह ट्रिक मुझ पर काम नहीं करती। अतिथि ने नमस्ते किया तो मेरी उँगलियाँ स्वत: नोट गिनने की मुद्रा में आ गईं। वे बोले 'भाई साहब मेरा इंटरव्यू अखबार में छपवा दो।' मैं चौंका। मैं कोई पत्रकार नहीं हूँ, न पुलिसवाला हूँ। अखबार वाले मेरे पत्नी-पक्ष के भी नहीं हैं कि वे मेरा लिहाज पालें। वे पिता-पक्ष जैसे हैं, हाथ उठाया और दे दिया धप्प, अस्वीकृत। किस खुशी में छपवाऊँ उनका इंटरव्यू? फिर भी मैंने पूछा 'आपका अ..अ.. शुभ नाम क्या है?'

'कवि प्रमेय, सर'। मैंने यह नाम कहीं पढ़ा-सुना नहीं था। मन हुआ उन्हें कह दूँ कि आपको छपास नामक असाध्य रोग लग गया है, उसका इलाज करवाइए। पर मैंने अपना व्यंग्य बाण रोक लिया और पूछा 'आपने कुछ उल्लेखनीय कार्य किया है?' वे बोले 'आप कुछ भी काम लिख दीजिए। इंटरव्यू छपवाने के लिए काम करने की क्या जरूरत है, आप तो तगड़ा इंटरव्यू लिख दीजिए। मेरी तीन प्रकाशनाधीन किताबों की चर्चा कर दीजिए। आठ-दस अप्रचलित पुरस्कारों के नाम लिख दीजिए। क्या है न आजकल साहित्य में इंटरव्यू की धूम है, बिना इंटरव्यू के आपका मूल्यांकन नहीं होता।' उनकी छपास-बुद्धि ने मुझे चर्चित होने का गढ़ा खजाना बता दिया। मैं रोमांचित हो उठा, रहस्य जानने की जिज्ञासा लिए मैंने पूछा, आपकी तीनों प्रस्तावित किताबों के नाम बताइए।

उनकी अंगुलियाँ बालों में घुस गयीं, दिमाग से बोध नहीं मिला तो बोले- किताबों के नाम आप ही रख दीजिए। मुझे कौन साहित्य अकादमी वालों

को किताबें भेजना है। मुझे तो एक अदद इंटरव्यू छपवाना है बस। क्या है न इंटरव्यू होगा तो वाहवाही होगी, मस्का लगाने वाले लोग मुझे विचारक कहेंगे और मैं ख़ुद को स्थापित कवि कहूँगा। भोली-भाली जनता मुझे महापुरूष समझेगी और रिश्वतखोर कर्मचारी बिना भोग माँगे मेरी पेंशन फाइल आगे बढ़ा देंगे।'

– पर प्रमेय जी, मैं आप के बारे में कुछ नहीं जानता।

– यही साफगोई आप के पक्ष में जाती है। आप तो बस दस-बारह प्रश्न लिख दीजिए, मैं उनके उत्तर लिखवा लाऊँगा।

कवि प्रमेय सच कहते हैं। लोग पत्र-पत्रिकाओं में येन-केन अपना इंटरव्यू छपवाना चाहते हैं। प्रेस और सत्ता से अपने बड़े-चढ़े रिश्ते बताना चाहते हैं। वे पत्र-पत्रिकाओं की कटिंग जेब में रखते हैं और शनि महाराज के नाम पर खाने-कमाने वालों की तरह अपना उल्लू सीधा करते हैं। यूँ कहिए कि एक चिन्दी मिल जाये तो बजाजखाना खोल देते हैं। कवि प्रमेय तो सिर्फ इंटरव्यू छपवाना चाहते हैं। राजनेता भैये लच्छेदार भाषण से लगाकर खुद पर पीएच. डी. का शोध-प्रबंध लिखवाते हैं। परिचित लोग अपने पड़ोसियों के हीन-चरित्र का कच्चा-चिट्ठा लिखवाते हैं। कुछ प्रतिवाद करता हूँ तो कहते हैं 'आप तो लिख दो, शेष अगले अंक में; या कि संवाददाता तथ्यों की खोज में लगा हुआ है। काली करतूतों का भंडाफोड़ और पर्दाफाश क्रमशः होगा।'

अच्छा बताइए, इससे पहले आपने कहीं इंटरव्यू दिया है, मैंने पूछा। वे बोले- 'हाँ बच्चे के नर्सरी में एडमिशन के लिए इंटरव्यू दिया था। पर वे इंटरव्यू की आड़ में डोनेशन माँग रहे थे।' मैं क्या कहता, मुझे चुप देख वे झन्ना कर बोले, 'इस शहर में चालीसों लोग ख़ुद को पत्रकार कहते हैं। उनमें न लिखने की तमीज है न बोलने की। वे दो रुपये वाला अखबार बेचते हैं और ख़ुद को पत्रकार कहते हैं। हॉकर को हिन्दी ने कितना सम्मानित नाम दिया है।' कवि प्रमेय सच बोल रहे हैं हिन्दी में आठ-दस अख़बार हैं, बाकी मुजरे को तैयार नगरवधुएँ हैं। कुछ सौ रुपयों का चन्दी-चन्दा बहुत है उनके लिए। मैंने कवि प्रमेय से कहा 'इंटरव्यू छपवाना आसान नहीं हैं। कुछ करो तो अख़बार वाले ख़ुद-ब-ख़ुद इंटरव्यू छाप देंगे। देश में बड़े-बड़े अभियान चल रहे हैं, झाड़ू पकड़ कर खड़े हो जाओ तो स्वच्छता से जुड़ जाओगे। कमर झुका कर खड़े हो जाओ तो फिटनेस चैलेंज से

जुड़ जाओगे। सेल्फी मुद्रा में एक्शन फोटो लो। फोटो और इंटरव्यू छपवाने के इससे सरल और अच्छे मौके पहले कभी नहीं थे।'

कवि प्रमेय तेश में आ गये। बोले– बहुत देखे कुछ करके इंटरव्यू छपवाने वाले। बीसियों लोगों के इंटरव्यू धुप्पल में छप रहे हैं। राजनेता कुछ भी बकें तो पहले पन्ने पर छप जायें। वक्तव्य दें तो वे फोटो सहित छप जाये। मैं भी चाहता हूँ कि अख़बार में मेरा इंटरव्यू छपे तो उसकी कतरन अपनी फेसबुक वॉल पर पोस्ट करूँ, लोगों को टैग करूँ और द्रुतगति से आती डिजिटल बधाइयों का आनंद उठाऊँ।

'देखिये भाई सा'ब आप प्रतिष्ठित लेखक हैं इसलिए मैं इज्जत से कह रहा हूँ मेरा इंटरव्यू अखबार में छपवा दीजिए नहीं तो।' मैं इस चुनौती के लिए तैयार हो गया, जिम्मेदार लेखक को अपना बचाव करते आना चाहिए। प्रतिभावान लेखक को कुछ आए न आए, नौटंकी करनी जरूर आनी चाहिए। मैंने कवि प्रमेय से पूछा 'नहीं तो क्या कर लोगे?'

'आपका इंटरव्यू मासिक 'विशेष' में छपवा दूँगा। मालूम है न पत्रकार रामबाबू के इंटरव्यू। उन्हें दो सौ रुपये दूँगा तो वे सब कर देंगे। आप से ही कहलवा देंगे कि आपका कोई चरित्र नही हैं, आप स्वमूत्र पीते हैं, पराये माल पर बुरी नजर रखते हैं, असहिष्णु हैं और आतंकवादी सोच रखते हैं। और हजारों बातें हैं जो नाउम्मीद लेखकों के बारे में लिखी जा सकती हैं।'

मैं मानसिक हमले के लिए तैयार नहीं था। अनाड़ी लेखकों का क्या है, साहित्यिक भाषा में असाहित्यिक लिख सकते हैं। मेरी मुट्ठियाँ ढीली हो गईं। मैंने कहा, 'कवि प्रमेय, आप अपना ही इंटरव्यू मासिक 'विशेष' में क्यों नहीं छपवा लेते? वह भड़क गये, बोले कवि हूँ, अपनी इज्जत अन्यत्र करवा सकता हूँ और मासिक 'विशेष' में लोगों की इज्जत उतरवा सकता हूँ। मुझे तो वहाँ इंटरव्यू छपवाना है जिसकी सामाजिक और राजनैतिक प्रतिष्ठा हो। जो पढ़ा जाता हो। मासिक 'विशेष' को अपने मासिक दौरों पर आये गुप्त रोग विशेषज्ञ खोलते हैं अपना विज्ञापन देखने के लिए।' उन्होंने सीधे–सीधे कहा, भाई सा'ब, बोलो आप मेरा इंटरव्यू सादर छपवाते हो कि मैं आपका इंटरव्यू छपवा दूँ और वे इशारा दे कर चले गए।

जन-जन की है मधुशाला

मौजूदा कॉपीराइट एक्ट के चलते बाबूजी हरिवंशराय बच्चन के अवसान के साठ साल बाद मधुशाला हर किसी की हो जाएगी, कॉपीराइट एक्ट लागू नहीं होगा। हमारे महानायक अमिताभ जी अपने बाबूजी की कविताओं को लेकर चिंतित हैं। विश्व साहित्य के इतिहास में यह पहला मौका है कि कोई पुत्र इतना सुपुत्र निकला। वरना आज तक किसी साहित्यकार की संतान ने अपने पिता की रचनाओं की इतनी परवाह नहीं की। परवाह तो छोड़िए, कभी ठीक से पढ़ा ही नहीं। आम भारतीयों के बाबूजी क्या छोड़ कर जाते हैं? एक पुश्तैनी किराये का घर, दो-चार भाई-बहन, और बैंक का कर्जा। कौन कविताएँ छोड़ कर जाता है भला। कवियों के जीते जी ही कविताएँ उन्हें छोड़ जाती हैं, ताकि कवि चैन से अपना परलोक सुधार सके। पर बाबूजी की कविताओं ने बाबूजी का साथ नहीं छोड़ा, वे खानदान का साथ अब कैसे छोड़ सकती हैं?

कुमार विश्वास ने बाबूजी की कविताओं से यूट्यूब पर बत्तीस रूपये क्या कमा लिए, कविताएँ विरासत बन गईं। लाखों कवि हैं यूट्यूब पर जिन्होंने एक धेला नहीं कमाया, अपने दर्जनों वीडियो पोस्ट कर दिए, पर किसी ने नहीं देखे। खुद कवि ने ही अपने वीडियो देखना बंद कर दिए। कविता है ही ऐसी नामुराद; हर कोई मधुशाला जैसी सुमधुर कविता थोड़े ही लिख सकता है। अमित जी मानते हैं कि ऐसी कविताएँ परिवार की कालजयी विरासत हैं, वे बकवास कॉपीराइट एक्ट से ऊपर हैं। बाबूजी के अवसान के साठ साल बाद मधुशाला हर किसी की हो जाएगी, उफ! वह सिर्फ और सिर्फ अमित जी का हक है, अमित जी की विरासत है। महानायक को डर है कि उनके पिताजी की रचनाएँ पब्लिक कर दी गई तो लोग कविताओं को खरोंच सकते हैं, छेड़छाड़ कर सकते हैं, नुकसान पहुँचा सकते हैं। जो उनका नहीं था उन्हें मिला, सारे असम्मान के साथ

मिला; बोफोर्स। जो उनका अपना है, वह इन्कम टैक्स विभाग वाले छीन रहे हैं। महानायक के विरोध के बावजूद छीन रहे हैं। पर ये कविताएँ तो उनका मालिकाना हक है, बाबूजी ने उन्हें विरासत में दी हैं। वे कह रहे हैं- ये दौलत भी ले लो, ये शोहरत भी ले लो, मगर ये विरासत न लो।

मैं अमित जी से दो सौ प्रतिशत सहमत हूँ। अभी तक लोग इतिहास के साथ छेड़छाड़ कर रहे थे, अब एक्ट से सीमातीत हो गये असंरक्षित साहित्य के साथ छेड़छाड़ करने लग जाएँगे, तौबा! लोगों की हिम्मत देखिए, भारत की राजधानी में सरे आम कई मधुबालाओं के साथ गैंगरेप होता है, तब कानूनी एक्ट आँखों पर पट्टी बाँध खामोश हो जाते हैं। जीती-जागती मधुबालाओं के साथ ऐसी जानलेवा छेड़छाड़ होती है तो बेचारी कागजी मधुबाला के साथ क्या होगा? मेरा कलेजा गले में अटक जाता है जब मैं हमारे सड़कछाप दीवानों के बारे में सोचता हूँ। वे मधुशाला को निचोड़ डालेंगे और जब एक बूंद भी नहीं टपकेगी तो वे कैसा हाल करेंगे मधुशाला का, क्या करेगा तब कॉपीराइट एक्ट। देश में सैकड़ों एक्ट हैं, आपका 'पैक्ट' है तो 'एक्ट' है अन्यथा रिश्वत के अभाव में सब रिजेक्ट है।

हमारे यहाँ सारे एक्ट पाठ्य पुस्तकों में अच्छे और सुरक्षित लगते हैं। पाठ्य पुस्तकों के बाहर एक्ट की सबसे ज्यादा मिट्टी-पलीद वकील लोग ही करते हैं। उन्होंने अपनी लघु शंका निवारण से ले कर सुदीर्ध शंका निवारण के लिए कोर्ट बना रखे हैं। बीच में जिला और उच्च न्यायालय तो हैं ही। जितने ज्यादा न्यायालय हैं, न्याय के आकाँक्षियों की उतनी ज्यादा दुर्दशा है। कॉपीराइट एक्ट के होते हुए भी, कितने ही प्रकाशक और नकलधर्मी साहित्यकार, पसंदीदा रचना पर अपने नाम का मुलम्मा चढ़ा देते हैं। वे साहित्यिक चोरी के साथ-साथ सीनाजोरी भी करते हैं, कुछ बिगड़ पाया क्या उनका! जो एक्ट है, वह 'एक्ट' नहीं करता।

'एंग्री यंग मैन' अब यंग नहीं रहे, पर एंग्री तो हैं। गुस्से में पूछ रहे हैं, किसने लिखा ऐसा बकवास एक्ट! भारत के हजारों साहित्यकारों और कलाकारों के वंशज इस कॉपीराइट एक्ट का सम्मान करते हैं। वे अपने माता-पिता की रचना को तय समय के बाद अपनी निजी विरासत नहीं मानते, जन-जन की धरोहर मानते हैं। माता-पिता चले गए, अब उनकी कविता का क्या मोह! कविता कोई वसीयतनामा तो है नहीं कि उसकी चिंता करें। पर महानायक फिल्मी हो गए हैं। वे अपने बाबूजी की रचनाओं की चौकीदारी करना चाहते हैं, और अल्प-रोजगारी बच्चन तृतीय के लिए यह चौकीदारी छोड़ कर जाना चाहते हैं।

विश्व विख्यात लेखकों की रचनाएँ छोड़िए, सौ से ज्यादा नोबेल पुरस्कार विजेताओं की रचनाएँ इंटरनेट पर मुफ्त में उपलब्ध हैं। शोधकर्ता, शोध पत्र लिख रहे हैं, और शौचकर्ता नकली साहित्य घड़ रहे हैं। रसिक जानते हैं, शुद्ध दूध कहाँ मिलता है और पानी मिला दूध कहाँ। महानायक को शिकायत है कि सोशल मीडिया ने साहित्य का अवमूल्यन कर दिया है। जब बॉलीवुड और भोजपुरी फिल्में, साहित्य को असाहित्य नहीं कर पाई तो सोशल मीडिया क्या कर लेगा! अश्लील कला और अश्लील साहित्य हर युग में रहा है। ब्लू फिल्मों के कलाकार मुख्यधारा की फिल्मों में समादृत हो सकते हैं, पर साहित्य में ऐसी बाजारू घुसपैठ नहीं है।

लोगों को मुफ़्त में पढ़ने के लिए श्रेष्ठ साहित्य विपुल में उपलब्ध है तो दीर्घकालीन या कालजयी कॉपीराइट एक्ट बनाने का क्या औचित्य? यह तो उस लेखक के साथ अन्याय होगा जिसके पैर में सदा–सर्वदा घुँघरू बंधे होंगे और वह सिर्फ फीस देने वालों के लिए ही छम–छम कर पायेगा।

महानायक ने बाबूजी की कविताओं को उनकी महत्ता से ज्यादा प्रतिष्ठित किया है। प्रमुख मंचों पर उन्होंने बाबूजी की कविताओं को श्रोताओं पर थोपा है, और उनकी आभा के सामने आयोजक मुँह बंद किए हँसते रहे हैं। अन्यथा बाबूजी के समकालीन और उनसे बेहतर लिखने वाले दर्जनों रचनाकारों को कभी ऐसे प्रतिष्ठित मंच और ऐसे अति प्रतिष्ठित बेटे नहीं मिले। मैं तो सभी रचनाकारों को सुझाव दूँगा कि यदि वे अपनी रचनाओं को कालजयी बनाना चाहते हों तो बाबूजी से सीखें। अपने बेटे (या बेटी) को ऐसा महान और हर प्रतिष्ठित मंच पर कविता पाठ के लिए प्रतिबद्ध बनाएँ, जैसे अमित जी हैं।

अमित जी ने कहा है जरूरत पड़ी तो वे अपनी विरासत के लिए लड़ेंगे। लड़ें, पर उससे पहले महानायक बाबूजी के इतर सोचें। बौद्धिक सम्पदा हमेशा के लिए विरासतों के बंधन में जकड़ गई होती तो क्या आज मानव सभ्यता इतनी समृद्ध और सर्वजन हिताय होती? कला और साहित्य महानायकों के कोठों पर विरासत बन अपनी चारदीवारी में इठला रहे होते। अच्छा हुआ तुलसी के वक्त कॉपीराइट एक्ट नहीं था, अन्यथा राम घर–घर तक शायद ही इतने पहुँच पाते। भूत–पिशाच और प्रेत जो हनुमान चालीसा के कारण हमारे निकट नहीं आ पाते हैं, लोकसभा और विधानसभाओं से बाहर आ जाते।

जिन्हें नाज था हिंद पर वो कहाँ हैं?

पिछले दिनों उपचुनावों में मतदान औसतन चालीस प्रतिशत हुआ, साठ प्रतिशत लोग वोट डालने ही नहीं आए। वे जमाई राजा की तरह ठसके मारे बैठे रहे, और प्रजातंत्र गिड़गिड़ाता रहा। ज्यादा शर्म की बात यह रही कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर क्षेत्र में बाईस प्रतिशत से भी कम मतदाताओं ने वोट डाले। बुद्धिजीवियों की बुद्धि ऐसी कुंठित हो गई कि उनका शरीर सोफों में धँसा रहा, पाँव चलने की क्षमता नहीं जुटा पाए। जनतंत्र चीखता रहा 'बचाओ, बचाओ', लेकिन बुद्धिजीवी निर्विकार बैठे रहे और राजनेता गैंगरेप कर गए। कोई भी जीता, कोई भी हारा, इससे क्या, जनतंत्र तो लुट गया।

ऐसा पहली बार नहीं हुआ, कई बार हुआ है और सिर झुकाए प्रबुद्ध मतदाताओं ने अपने साथियों को चेताने की कोशिश की है। वोट देकर अपनी सेल्फी पोस्ट करने का आनंद वे भूले नहीं हैं। मुझे लगता है, मतदान के दिन बुद्धिजीवियों की बुद्धि घास चरने चली जाती है। अन्यथा जंतर-मंतर या सड़कों पर शालीन और विशाल प्रदर्शन करने में वे आगे दिखते हैं। जनविरोधी नीतियों के खिलाफ उनका मोर्चा मतदान के दिन कहाँ गायब हो जाता है? बुद्धिजीवी स्वयं को प्रबुद्ध और दोष रहित मानते आए हैं, उनके वोट नहीं देने का एकमात्र कारण है आलस। वे अपनी आलसी प्रवृत्ति को शब्द-जाल से 'चिंतन' बना देते हैं।

मैंने कॉफी हाउस में कुछ बुद्धिजीवियों को इसलिए घेरा कि मतदान नहीं करने का उनका कारण जान सकूँ। पहले प्रखर बुद्धिजीवी से मैंने पूछा- 'आप वोट देने क्यों नहीं गए?' खुद को बेनकाब होता देख वे बोले- 'पार्टी ने नए आए दलबदलू को टिकट थमा दिया था। हमारे निष्ठावान कार्यकर्ताओं की बरसों

की तपस्या धूल में मिल गई। हम चाहते थे उसे वही धूल चटा दी जाए, सो दे दी पटकनी।' मैंने प्रतिप्रश्न किया– 'बहुत से दूसरे उम्मीदवार थे, कोई तो योग्य होगा, उसे ही वोट दे देते।' वे तुनक कर बोले– 'अरे वाह, अपना वोट है, दें न दें, अपनी मर्जी। अपनी पार्टी को सबक सिखाना था, सो सिखा दिया। देश का क्या, देश की परवाह करने के लिए इतने विपक्षी हैं तो सही।'

मैंने दूसरे बुद्धिजीवी को पकड़ा। वे मौजूदा राजनीति को सरे आम कोसते थे। कहने लगे– 'यह बाईस प्रतिशत जो वोट हुआ है, सब खरीदा हुआ है। पिछड़े और गरीब लोगों का क्या बिगड़ता है; छोटे से प्रलोभन में, शराब और कपड़ों के बदले अपना वोट बेच आते हैं। हम अपना वोट अपने पास सुरक्षित रखते हैं, ताकि जनतंत्र सुरक्षित रहे, ताकि राजनेताओं को लगे कि बुद्धिजीवी आहत हैं। राजनेताओं ने बुद्धिजीवियों के वोट का उचित मूल्यांकन नहीं किया। उन्होंने हमें ठेंगा दिखाया तो हमने भी वही किया। इस देश में बुद्धिजीवी असहिष्णु मान लिए गये हैं।'

ये दोनों बुद्धिजीवी दकियानुसी निकले। देश के प्रति उनमें प्रतिबद्धता नहीं दिखी। अब मैं आधुनिक बुद्धिजीवी से मिला। वे शहरी हैं, शहर में ही पले-बढ़े। कहने लगे– 'बुद्धिजीवी शहरों में ज्यादा हैं, गाँवों में कम। शहरी लोग सोच-समझ कर मतदान करते हैं और ग्रामीण भेड़ चाल चलते हैं। इसलिए आमतौर पर शहरों में मतदान कम और गाँवों में ज्यादा होता है। फिर, राजनेता सारी योजनाएँ गाँवों के हिसाब से बनाते हैं ताकि वे आसानी से सरकारी लाभ हड़प सकें। गाँवों में कुछ पहुँचे, न पहुँचे, कौन देखता है, कौन समझता है। आजादी के इतने सालों बाद भी चाहे वहाँ पीने को साफ पानी नहीं हो, बिजली नहीं हो, पर वोट खरीदने वाले तो हैं, घर पर मस्टर रोल बनाकर पैसे देने वाले तो हैं। यहाँ शहर वालों के लिए क्या है – चाय और पकौड़े के ठेले लगाने के सिवाय।

बुद्धिजीवी हो या श्रमजीवी, यदि वे अपने वोट का उपयोग नहीं करते तो वे जनतंत्र की जड़ों को खोखला करते हैं। नया मंतव्य पाने के लिए मैंने अपने श्रमजीवी कम बुद्धिजीवी मित्र को ढूँढ लिया। वे श्रम और बुद्धि के संतुलन पर जोर देते थे। उन्हें जन-सरोकार जलेबी जैसे प्रिय थे; जहाँ मिले, चाटने लग जाते थे। मुझे लगा, उन्होंने जरूर वोट दिया होगा, मतदान के दिन सार्वजनिक छुट्टी जो

थी। मैंने बड़े विश्वास से कहा– 'आपने अच्छा किया जो वोट डाल आये, अन्यथा मतदान का प्रतिशत और गिर जाता।' वे खीं-खीं कर हँसने लगे, बोले– "नहीं मित्र, मैं तो नहीं गया इस बार चोंचला करने। क्या कहूँ, सत्ता पक्ष हो या विपक्ष, सब बारी-बारी से सत्ता-सुख भोगते रहते हैं। उन्हें न बुद्धिजीवियों की चिंता है न श्रमजीवियों की, उन्हें बस सत्ताजीवियों की चिंता है। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, महंगाई और लचर कानून व्यवस्था की निंदा करने से अब कुछ नहीं होता, ये सभी राजनेताओं की रखेलें हो गई हैं।" अब तो यह बात हो गई कि 'कोउ नृप होऊ, हमें ही हानि।'

मतदान नहीं करने के बुद्धिजीवियों के कुतर्क यदि आम जनता को मालूम हो गए तो उनका बुद्धिजीवियों पर से विश्वास उठ जाएगा। वामपंथी उन्हें दामपंथी लगेंगे, और दक्षिणपंथियों में उन्हें भूत-प्रेत और पिशाच नजर आएँगे। एक जमाना था जब बुद्धिजीवियों के आह्वान पर जनमानस उनके साथ उठ खड़ा होता था, कदमताल करने लगता था, आजादी की अहिंसक लड़ाई जीत लेता था। सम्पूर्ण क्रांति का बिगुल बजा कर तानाशाही सत्ता को उतार फेंकता था। निर्भया के साथ सारा भारत अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ने लग जाता था। क्षेत्रीय स्तरों पर जनसरोकारों से जुड़े लोग अपनी जनता के हथियार हुआ करते थे। बुद्धिजीवियों का खामोश होते जाना जनतंत्र के लिए खतरनाक है। सपने बेच रही सरकारों और मासूमियत का मुखौटा पहने राजनेताओं को आईना दिखने वाले लोग अब कहाँ हैं? जिन्हें नाज था हिंद पर वो बुद्धिजीवी कहाँ हैं?

हम संप्रदाय से ऊपर उठ गए

दिमाग कुलबुला रहा है। इस कुलबुलाहट से व्यंग्य उपजता है। शायद इसलिए आदमी आदिम जमाने से व्यंग्य करने का शौकीन रहा है। वह जिस वस्तु को देख ले उसका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करना उसकी प्रवृत्ति है। विश्लेषण के अंत में उसे निष्कर्ष भी निकलना होता है कि आदमी सर्वश्रेष्ठ है। उसने धरती पर छोटे-बड़े जीव देखे तो उसे बड़ी संतुष्टि हुई। उसने उनको नाम दिए- कीड़ा, मकोड़ा, चूहा, गीदड़, लोमड़ी आदि। लोगों ने इस वर्गीकरण को सप्रेम स्वीकार लिया। फिर एक आदमी दूसरे को कीड़ा, मकोड़ा कहने लगा। उसको पुरुषों में ही चूहे-गीदड़ मिल गए और महिलाओं में लोमड़ियाँ। उसे लगा ऐसा कर वह अपने समकक्षों को नीचा दिखा रहा है।

दूसरे आदमी को पशु तुल्य बनाने से उसे संतोष नहीं हुआ तो उसने जातियाँ बना दीं। जातियों की संख्या मुझे नहीं मालूम। तैतीस करोड़ देवी-देवताओं के डर के मारे जनगणना महानिदेशक जातियों की कुल संख्या बताने से डरते हैं।

बचपन में किसी ने मुझे बताया था ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनकी डायरेक्ट एप्रोच है। वे भगवान को जानते हैं, भगवान उनको जानते हैं। ब्रह्म जानाति ब्राह्मण:। मैं एक ब्राह्मण से मिला, उनसे पूछा- देव, आप कैसे ब्राह्मण हैं। वे बोले हम सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, हम चतुर्वेदी हैं; द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी। मैंने कहा अनंतवेदी तो आप से ऊपर हुए न? वे गुस्सा हो गए, कहने लगे, मूरख, वेद चार ही हैं, अनंत नहीं। चलिए मान लेते हैं, सहृदय पुरखों ने जाति प्रथा कर्म आधार पर बनायी थी। तद्न्तर राजनीति ने जाति प्रथा को हथियार बना दिया, फूट डालो और राज करो। राजनीतिज्ञों का यह रामबाण सूत्र है, आज भी उतना ही कामयाब है, जितना अंग्रेजों के वक्त था।

इक्कीसवीं सदी के हम लोग अब तक के सबसे समझदार लोग हैं।

जाति और धर्म पुरातनपंथी हैं, हम इन्हें नहीं मानते। हम संप्रदाय से ऊपर उठ गए हैं, काले-गोरे से ऊपर उठ गए हैं। पर क्या करें मनुष्य हैं, हम में दिमाग है, जो नींद में भी काम करता है। हमने अब अपनी पहचान के नए मानदंड बना लिए हैं- आर्थिक मानदंड। अंग्रेजों ने इन्हें नाम दिया 'अपर क्लास' और 'लोअर क्लास' हमने उसका भारतीय करण कर दिया- उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। रेलगाड़ी में फर्स्ट क्लास, सेकंड क्लास आदि डिब्बे साथ मिलकर रेल चलाते हैं, वैसे ही उच्च वर्ग और निम्न वर्ग साथ मिलकर देश चलाते हैं। अनेकता में बेमिसाल एकता है। अब व्यंग्य करने का मजा है; उच्च वर्ग, निम्न वर्ग पर तंज कसे और निम्न वर्ग, उच्च वर्ग पर बाण चलाये।

निम्न वर्ग हर काम करता है, साथ ही सब दु:ख-दर्द भी सहता है। उच्च वर्ग शारीरिक काम नहीं करता, सिर्फ ऐश करता है। श्रम का मूल्य कम है और पूंजी का ज्यादा। आदमी ने जब से पूंजी नामक परी को घड़ा है, उसी का दीवाना हो गया है। जिसे देखो पूंजी चाहिए, ज्यादा से ज्यादा चाहिए। निम्न वर्ग के संघर्ष व उच्च वर्ग की लालसा ने एक सैंडविच वर्ग बनाया है। आपने सही पहचाना, मध्यम वर्ग। मैं और आप सभी इसी वर्ग में आते हैं। काम के वक्त आराम करते हैं, आराम के वक्त काम करते हैं। काम और आराम का समीकरण है मध्यम वर्ग, काम और आराम का सैंडविच है मध्यम वर्ग।

मुझे उच्च वर्ग का ज्यादा अनुभव नहीं है। बस, मैंने उच्च वर्ग के लोगों के नाम सुने हैं। जैसे बिल गेट्स, वॉरेन बफेट, जकरबर्ग, अंबानी। इन्हें हमेशा सिक्युरिटी घेरे रहती है, उनको स्पर्श कर पाना कठिन है। हाँ, इस वर्ग में ट्रंप जैसे अभिजात्य लोग भी हैं जो जब, जिसे चाहें, अनचाहा स्पर्श दे देते हैं। ये पैदाइशी उच्च वर्ग के नहीं है; ठोकरें और धक्के खा-खा कर उच्च वर्ग में आये हैं। हम सब मध्यमवर्गियों के लिए ये मिसाल हैं, फैसबुक और ट्विटर पर फॉलो करने लायक हैं।

बात तो मैं अपने ही वर्ग की कर रहा था। एशिया हो, यूरोप हो या अमेरिका, हर जगह मध्यम वर्ग सबसे भारी है। हमारा वर्ग सृष्टि का सबसे मुखर वर्ग है, कोई भी मसला हो हम टाँग अड़ा देते हैं। शोषक बनना हो तो निम्न वर्ग को निचोड़ देते हैं, और शोषित बनना हो तो उच्च वर्ग की हाय-हाय शुरू कर देते हैं। अपने मध्यम वर्ग की बहुत निजी बात मैं आपको ही बता रहा हूँ, इसे गोपनीय

रखें– भ्रष्टाचार हमीं करते हैं और भ्रष्टाचार के खिलाफ भी हमीं खड़े होते हैं। हिन्दी की बात अंग्रेजी में करते है, सबके सामने अंग्रेजी को गाली देते हैं, पर अपने बच्चो को इंग्लिश मीडियम स्कूल में भेजते हैं। चरित्र के इस उदात्त और व्यावहारिक स्वरूप के कारण मुझे अपनी 'क्लास' पर बहुत गर्व है।

मैं भलीभाँति जानता हूँ– आप भी 'मिडिल क्लास' हैं। आप 'ऊपरी' बर्थ वाले होते तो तान कर सो रहे होते, इस तरह व्यंग्य नहीं पढ़ रहे होते। उच्च वर्ग के लोग ऐसी साधारण चीजें थोड़े ही पढ़ते हैं। उनके सलाहकार जो कहते हैं वही पढ़ते हैं, उनको जो ब्रीफिंग में सुनाया जाता है वही सुनते हैं। हमारे वर्ग की शानदार बात है, हमारा बहु–चरित्रवान होना। एक चरित्र ही तो है जो उच्च वर्ग और निम्न पास हमसे कम होता है। हम डंके की चोट अपना चरित्र 'डिक्लेयर' कर सकते हैं। उसमें कुछ लफड़ा हो जाए तो उसे शालीन तरीके से ढँक कर रख सकते हैं। हमारे यहाँ कभी 'सीबीआई' वाले या आयकर अधिकारी छापे नहीं मारते।

निम्न वर्ग वाले हमसे एक ही जगह आगे हैं कि उनके पास खोने को कुछ नहीं होता। सारे विश्व की सरकारें उनके लिए बहुत कुछ करना चाहती हैं। उनको वोट बैंक बना लूटना चाहती हैं। तब हम निम्न वर्ग के पहरेदार की तरह खड़े हो जाते हैं। हम काम करने वाले लोग हैं। सरकार जो देती है, उसे बीच में हड़प करने का रास्ता हम उच्च वर्ग को बताते हैं, इस तरह वे और उच्च बन जाते हैं। हम बैंक में हो तो अपने पासवर्ड उन्हें दे देते हैं। वे मंदिर–मस्जिद–चर्च तनवाते हैं, और हम उन परम्पराओं को पोषित करते हैं, उनकी जय–जयकार करते हैं।

हमारा वर्ग बहुत महत्त्वकांक्षी है। चालीस हजार रुपए वेतन हो तो हम साठ हजार खर्च करते हैं। उच्च वर्ग की नकल करते हुए हम वहाँ पहुँचने के सपने देखते हैं। मुझे खुशी है कि अब जाति से कोई स्टेटस नहीं बनता। स्टेटस बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यदि आप मिडिल क्लास हैं तो थोड़ा संघर्ष करिए और साथ ही मक्खन लगाइए। आप पाएँगे कि 'अपर मिडिल क्लास' नामक वर्ग आपसे ज्यादा दूर नहीं है। अगर आप निम्न वर्ग के हैं तो काहे कि चिंता, अपने वर्ग को कस कर लात मारिए और कुछ ऊपर उठिए, आपके लिए 'लोअर मिडिल क्लास' का रुतबा हाजिर है। आइए, एक साथ बोलें बटर सैंडविच क्लास जिंदाबाद, मिडिल क्लास जिंदाबाद।

वे ब्यूटीफुल थीं

वे सुंदर दिखने के लिए कई शल्य-क्रियाएँ करवा चुके हैं। अब उनका मुँह चाँद जैसा हो गया है, टेढ़ा। पहले मुझे लगता था वे राजनेता हैं, इसलिए सीधे मुँह बात नहीं करते। पिछले चुनाव में उनकी जमानत जब्त हो गई पर मुँह टेढ़ा ही रहा, तब लगा यह नीतिगत मामला है। वे मुझे आज सौंदर्य क्लिनिक में मिल गए। मैंने पूछा, 'आप अब उद्‌घाटन करने आए हैं?' सुप्रीम कोर्ट ने कह दिया है कि राजनेता के पास उद्‌घाटन करने का समय नहीं हो तो जनता खुद उद्‌घाटन कर ले। इसलिए क्लिनिक का उद्‌घाटन पाँच महीने पहले ही हो गया। वे कहने लगे, 'शर्मिंदा न करें, चेहरे की सर्जरी के लिए कंसल्टेशन है। सर्जरी कराने में बड़ा जोखिम है। पर क्या करूँ, टिकट पाना है, युवा वोटरों को रिझाना है।' दिमाग भले सठिया जाए, चेहरा युवा दिखना चाहिए।

राजनेता कॉस्मेटिक सर्जन से उलझ रहे थे तो डॉक्टर उन्हें समझाने लगा 'सर, हम सुंदर लोगों को और सुंदर बना सकते हैं सर। हम बंदर के चेहरे को आदमी का थोड़े ही बना सकते हैं। हमारे प्रोफेसर को माइकल जैक्सन की नाक बराबर करने में दस सर्जरी करना पड़ी थीं, आपके तो पूरे मुँह का मामला है। हम आपको दुनिया का सबसे हैंडसम राजनेता बना सकते हैं, कनाडा के प्रधानमंत्री जैसा। हमें अलग-अलग एंगल से कई बार ट्राय करना पड़ेगा। आप फीस जमा करा दें, और एक-दो तारीख एडवांस में ले लें।'

वे रिसेप्शनिस्ट के पास पहुँच गए। काउंटर पर इतनी सुंदर युवती को देख कर हर कोई डॉक्टर का मुरीद हो जाये। वह जिस भी एंगल से आँख उठा कर देखती है, आगंतुक को घायल कर देती है। जिस शालीनता से उसके होंठ खुलते

हैं और वह सर्जरी की कार्यपद्धति समझाती है, 'डेट' बुक करने का आपका मन बन जाता है। वह एक अधेड़ पुरुष को बता रही थी कि डॉक्टर के दादाजी ने देवानंद के चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी कर उन्हें सदाबहार हीरो बना दिया था। अब वह बुजुर्ग अपनी नाक पतली कराने के लिए 'डेट' बुक कर रहा है।

सौंदर्य क्लिनिक पर बहुत भीड़ है, कार पार्किंग के लिए जगह बिल्कुल नहीं है। सुंदर लोग अधिक सुंदर दिखने को उतावले हैं। वे देश की आर्थिक स्थिति और अपनी सुंदरता की वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट हैं। जब भी अपने से अधिक सुंदर व्यक्ति को देखते हैं, वे आत्म ग्लानि से भर जाते हैं। मन मसोस कर रह जाते हैं कि काश वे स्विट्ज़रलैंड में जन्मे होते, काश इंटरनेट पर पढ़-पढ़ कर वे भी 'सिक्स-पैक' बना पाते। काश, ऐसी कचौड़ी या चाट बनती जो उनके पेट को रामदेव जी जैसा अवतल बना देती। काश, फेयर एंड लवली के बारे में उनकी मम्मी को पता होता।

इस युग में तन, तनतनाट होना चाहिए। मन कितना भी मैला हो कौन देखता है। अधिकांश सफल पत्रिकाएँ सुविचार वाले कॉलम में त्वचा निखारने के दस घरेलू नुस्ख़े छाप रही हैं। आपने शिशु-गधे को देखा होगा, चमकदार, श्वेत, रेशमी-मुलायमी। वह जैसे-जैसे बड़ा होता है, गधा बनता जाता है। वह सुंदर-असुंदर के फेर में नहीं पड़ता, गधा ही रहता है। आदमी और गधे में यही मूल अंतर है। आदमी, आदमी बने या न बने, वह सुंदर बनना चाहता है, शिशु-गधा बनना चाहता है। यहाँ आदमी शब्द में पुरुष और महिलाएँ दोनों व्यक्त हैं। हालांकि सौंदर्य-चेतना के मामले में पुरुष, महिलाओं के अनुचर हैं, पर वे महिलाओं से बहुत पीछे हैं, वे जन्म-जात 'स्लो' जो ठहरे। बाहर जाते समय महिलाओं को वस्त्र बोझिल लगते हैं इसलिए वह उन्हें कम से कम धारण करती हैं, पर दर्पण और टच-अप सामग्री उन्हें कभी बोझिल नहीं लगतीं। पुरुष है कि उसे खुद का थोबड़ा समझ ही नहीं आता, वह हमेशा दूसरों को ताड़ता रहता है और लाइन मारने की भूमिका घड़ता रहता है।

क्लिनिक के हॉल में एक अभिनेत्री का नाम गूंजा तो कई लोग रिसेप्शनिस्ट को देखने लगे। लगा अब कोई नया सत्य उद्घाटित होने वाला है। अभिनेत्रियों के वेटिंग रूम से लगा कर बेडरूम की हर हलचल लोगों के लिए

'ब्रेकिंग-न्यूज' होती हैं। खरबों रुपयों के घपलों की खबर सुन कर हमारे कानों पर जूं नहीं रेंगती। अभिनेत्री को जुकाम होने का ट्वीट देख कर हम उदास हो जाते हैं। शूटिंग के दौरान अभिनेत्री की चप्पल टूट जाए तो डॉक्टर दौड़ पड़ते हैं, लेकिन ब्रिज टूटने पर बस नदी में कूद जाए तो लोग सेल्फी ले कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। सरकार को कोई कोसे तो भी सरकार 'सरकाज्म' को लोरी समझती है तथा अधिक गहरी नींद में सो जाती है। ऐसे में चुलबुली अभिनेत्री की नाक या होंठ 'फिक्स' कराने की बात उठी तो हमारे कान खड़े हो गए। रिसेप्शनिस्ट ने देवीजी को दाना डाल दिया था। उसने रिसेप्शनिस्ट से सकुचाते हुए पूछा- 'आप जैसा दिखने के लिए मुझे कितनी बार सर्जरी कराना पड़ेगी? रिसेप्शनिस्ट ने कंधे उचकाते हुए कहा- मुझे क्या मालूम, आई डोंट नो।

देवी ने रिसेप्शनिस्ट से सही प्रश्न किया था, जो कई सुंदरियाँ नहीं करती। बहुत सर्जरियाँ कराने के बाद भी उन्हें तृप्ति नहीं हुई कि वे पर्याप्त सुंदर हैं! हर कॉस्मेटिक सर्जरी के बाद उन्होंने खुद से कहा होगा, बस एकदम लास्ट! सर्जरी का यह मायाजाल एक दिन इतना फैला कि उनसे बड़ा हो गया। मेरी आँखों में सौंदर्य परी घूमने लगीं। एक सर्जरी गलत हो गई तो वे परलोक चली गईं। वे ब्यूटीफुल थीं, कॉस्मेटिक सर्जरी ने उन्हें अंग्रेजी में 'फूल' बना दिया।

एकतरफा ही सही

मेरे पास करने को कुछ नहीं था तो आत्म विश्लेषण करने लगा। मुझे लगा एकतरफा खयाली पुलाव पकाने में मैं पारंगत हूँ। व्यंग्य लिखना शुरू ही करता हूँ कि प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के रेशमी पृष्ठों पर उसकी प्रकाशित छवि दिखने लगती है। अपने फोटो और नाम को तो पहचान लेता हूँ पर शेष धुंधला दिखता है। मैं उसी में मगन रहता हूँ और घंटों बीत जाते हैं, कागज कोरा ही रहता है। जैसे-तैसे रचना पूरी करके संपादक जी को भेजता हूँ तो मैं उसे स्वीकृत मान बैठता हूँ। उनसे कभी नहीं पूछता कि आपने रचना का क्या हश्र किया। उन्हें मैं प्रिय महोदय अलंकरण से संबोधित करता हूँ, टाइपो करूँ तो भी उन्हें अप्रिय महोदय नहीं लिख पाता। मंजे हुए लेखक यही करते हैं, जो सोचते हैं वह नहीं लिखते।

मैंने पहला प्यार भी ऐसे ही किया, एकतरफा। आप दीवाने हों तो सारी दुनिया मदमस्त नजर आती है। माँ ने पूछा कि कोई लड़की ध्यान में हो तो बता दे। मैं ठहरा कन्हैया, कई गोपियाँ ख्याल में थीं पर मैंने माँ से कह दिया- "मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो।" बता देता तो 'रिजेक्ट' होने का डर था। वो माखन कोई और खा गया।

भगवान को भी मैं एकतरफा ही मानता हूँ, उधर से कोई 'रिस्पोंस' नहीं है। मैं पूछ कर उनकी परीक्षा नहीं लेना चाहता। आस्था का संकट बहुत बड़ा संकट है, सामने वाला नकार दे तो आप उस काल्पनिक तारणहार से भी गए। मैं कई पाखंडी बाबाओं को जानता हूँ, जिनका भगवान से एकतरफा संबंध रहता है। वे भक्तों से ऐंठते हैं, उनकी भावनाओं को निचोड़ते हैं और धर्म को शर्मिंदा करते

हैं। भगवान मूक दर्शक बने रहते हैं। अपनी पार्टी के लोगों की निंदा करना हाइकमान को शोभा नहीं देता। बाबा लोग भगवान के नाम का जो मुरब्बा बनाते हैं उसमें धीरे–धीरे फफूंद लग जाती है। उनके पापों का घड़ा छलकता है तब पुलिस उन्हें धो–धो कर पवित्र करती है और तिहाड़ में उनसे साधना कराती है। भगवान तब भी मूक दर्शक बने रहते हैं, बेचारे बाबा की जमानत नहीं कराते।

मैंने बॉस की एकतरफा मक्खनबाजी बेहिसाब की है, उधर से सिगनल नहीं मिला तो भी की है। बॉस नामक कौम अपने मातहतों पर हमेशा चढ़ी हुई और अपने वरिष्ठों के लिए सदैव बिछी हुई होती है। उन्हें सीधे मुँह बात करना ही नहीं आता, मनोविज्ञान के सारे नियम वहाँ फैल हो जाते हैं। बॉस कंस के वंशज हैं। उन्हें भोग नहीं दिखे तो उनकी सामान्य लीलाएँ भी क्रूर हो जाती हैं। वे एकतरफा ऐसे गोल मारते हैं कि बेचारा मातहत उनकी गालियाँ खा–खा कर ही पेट भर लेता है। मुझे लगता है किसी दिन विधाता को नया प्रयोग करने की सूझी होगी और उन्होंने राक्षस का मानवीय संस्करण घड़ दिया।

मैं जिन हॉकी और फुटबाल टीमों में खेला हूँ वे कभी विश्व स्तरीय नहीं बनीं। हमने अपने इलाके में खेलते हुए एकतरफा गोल खाने के बड़े रिकॉर्ड बनाए और दर्शकों को आनंदित किया। जहाँ प्रतिरोध का कोई अर्थ न हो वहाँ खाली–पीली अन्ना या केजरी बन कर ऊर्जा खर्च करने का क्या मतलब!

मेरे एक मित्र हैं, आत्म विश्वास से सराबोर। चुनाव में उन्होंने परचा भरा, खूब प्रचार किया। चुनाव सभा में किसी से हाथ खड़ा करवा कर नहीं पूछा, किसी को कसम नहीं दिलवाई। बस उनके पास नोटबंदी के बाद जारी किए नोट थे, वे जीत गए। उन्हें एकतरफा लगा कि वे मंत्री बन रहे हैं, लेकिन सीएम से पूछने की हिम्मत नहीं हुई। वे अब केबिनेट विस्तार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुगालतों में जीना, आशाओं के सहारे जीना ही पॉजिटिव जीना है। एक बार उन्हें साँप ने काट लिया, वह समझदार राजनेता थे, चाहते तो साँप को डस भी सकते थे। राजनेता मित्र को कुछ नहीं हुआ, हाँ साँप को विधायक विश्राम गृह में रहने और विधानसभा जाने की तलब लग गई।

अपने फायदे के लिए आदमी एकतरफा बहुत–सी चीजें मान लेता है। मसलन उसने गाय को माँ मान लिया, और उससे मातृवत व्यवहार करने लगा।

उसे बचा-खुचा खाना दे कर उसका दूध दोहने लगा। पुण्य करने का ढोंग करने से शोषण करने का लाइसेंस मिल जाता है। डंडे मार-मार कर उससे गोबर निकलवाता रहा और अपना घर लीपता रहा। गाय क्या करती, वह माँ बन कर ख़ुश थी। आदमी की माँ बन कर स्त्री को इसके सिवा मिला क्या!

आप जानते हैं कि 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' गाने-गुनगुनाने के लिए ठीक है, वरना हकीकत हम सबको मालूम है। मुझे मालूम है कि व्यंग्यकारों को कभी अमर होने का आशीर्वाद नहीं मिलता, इसलिए मैंने भारत में ही चंडीगढ़ या मुंबई में पुनर्जन्म की मांग की। सब महानगरों की वेटिंग-लिस्ट "फुल" है, मुझे अबुझमाड़ या नक्सली इलाकों में पुनर्जन्म मिल सकता है। विदेशों में पुनर्जन्म की संभावना तलाशी तो सीरिया या अफ्रीकी देशों के ही टिकट मिल रहे हैं। थके-हारे मैं अब स्वर्ग जाने का एकतरफा प्लान बना रहा हूँ, सुना है वहाँ लोकल ट्रेनों जैसी भीड़ रहती है।

जो कलमकार हाथ धो कर सरकार के पीछे पड़े रहते हैं, उनके लिए एक चौंकाने वाली ख़बर है। जब सरकार का मनोबल सशक्त होता है वह आतंकवाद से निबटने के लिए एकतरफा सीज फायर की घोषणा करती है। सरकार यह सदाशयता से करती है कि आतंकी अमन पसंद बनें पर आतंकी इस समय में नया गोला-बारूद इकट्ठा करते हैं। नफरत आदमी का दिमाग इतना लील जाती है कि आदमी प्यार को भी नफरत की निगाह से देखता है। काश कोई हास्य-व्यंग्य ऐसे टेढ़े आतंकी दिमाग को थोड़ा सीधा कर पाता।

आप कहेंगे मैं भी एकतरफा लिख रहा हूँ यह सोच कर कि इसे आप पढ़ेंगे और हँसेंगे। इसी आशा में मैंने दो पेज लिख दिए। आप भी कभी दो लाइनें लिख दें, आलोचना न सही, प्रशंसा ही सही।

इंडियन पपेट शो

(विधानसभा थियेटर खचाखच भरा हुआ था। महामहिम राज्यपाल, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और मुख्यमंत्री प्रथम पंक्ति में विराजमान थे। यह विधानसभा सत्र नहीं था पर होहल्ला वैसा ही था। संगीत की फुहारें उठीं और दर्शक चुप होने लगे। स्पीकर महोदय ने बाहरी पर्दा खींचा तो हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। पार्श्व पर्दे पर हिंदी में लिखा था- **'इंडियन पपेट शो'** उसके नीचे लिखा था लोकतंत्र कला मंडल द्वारा प्रस्तुत। लोकतंत्र कला मंडल के निदेशक ने माइक सम्हाला। हिंदी में इन्हें कठपुतली मास्टर कहते थे पर अंग्रेजी पसंद लोग उन्हें हाईकमान के नाम से जानते थे। उनके पास बत्तीस कठपुतलियों की कमान थी। कठपुतलियाँ नचाने में उनका कोई सानी नहीं था। जैसा कार्यक्रम होता वे वैसे डायलॉग बोलते तथा कठपुतलियाँ नचा देते। वे कठपुतलियों के मालिक नहीं थे, मालिक कभी मंच पर नहीं आते थे, मालिक गल्ले पर बैठते थे, टिकट बेचते थे और लोकतंत्र मैनेज करते थे।)

कठपुतली मास्टर - साहबानो, आप सबका स्वागत। लोकसभा, राज्यसभा और कई विधानसभा प्रेक्षागृहों में हमने यह शो मंचित किया है। इसमें नचनिया, मदारी और नागिन डांस, पति-पत्नी की नोकझोंक और बहुत कुछ है। इंडियन पपेट शो का आनंद लीजिए।

(नेपथ्य में गाना बजता है... अरे... रे रे रे रे रे रे, तीन पहरेदार कठपुतलियाँ नंगी तलवार लिए ऊपर से उतरती हैं और पिछले पर्दे से सट कर खड़ी हो जाती हैं, चौकन्नी निगाहें। एक नचनिया कठपुतली आदाब और नृत्य करते हुए मंच पर उतरती है।)

नेपथ्य से – अनारकली सबको नमस्कार करो। ये नमस्कार, ये नमस्कार, ये नमस्कार। जज साहब, मी लॉर्ड, कठपुतलियों की अग्रिम जमानत मंजूर हो।

(दर्शकों की समवेत हँसी, उछल-कूद और विभिन्न मुद्राओं में नमस्ते करतीं अन्य कठपुतलियाँ मंच पर उतरती हैं, नेपथ्य से कठपुतली मास्टर उनका परिचय देते रहते हैं।)

पहली – ये घोड़े पर बैठी एमेले कठपुतली देखो। ये आरक्षित एमेले है, कागज की लुगदी की बनी है। इसकी पोशाक ग्रामीण है, और नाम है बबली। यह बिना बात के रो सकती है और हर किसी को धो सकती है। इसको अंग्रेजी में सिर्फ बी लिखना आता है पर बहुत आनाकानी और मोलभाव के बाद बी लिखती है। यदि इसको सारे अल्फाबेट्स आते तो छब्बीस राज्य अपने नाम लिखवा लेती।

अब दूसरे एमेले कठपुतले रमेश सिंह से मिलिए, यह बाइक पर सवार है, एंग्री यंग मैन है,प्लास्टिक का बना है, हमारा प्रवक्ता है। जो बोलता है निचोड़ कर बोलता है। इसे सबसे ज्यादा शालीन गालियाँ आती हैं। यह तीसरा कठपुतला जो कार में सवार है, राजसी है, नाम है राजा। यह मुख्यमंत्री पद का चेहरा है, काठ का बना है। चकाचक कुर्ता-पाजामा-जैकेट पहने है। यह अंदर से घाघ, दबंग और ऊपर से माधो है। चौथा कठपुतला टीवी एंकर है। इसके आगे-पीछे, ऊपर-नीचे माइक लगे हैं। यह फुसफुसाहट तक को पकड़ सकता है, आप जो बोलें उसका तत्काल अनर्थ कर सकता है। इसके साथ इसका कैमरा मैन है। शेष एमेले कठपुतले-पुतलियाँ हाथ खड़े करने और हाय-हाय चिल्लाने में निपुण हैं, लोकतंत्र में सच्चे जनप्रतिनिधियों का इतना ही रोल है।

तालियाँ बजाइए साहबानो। कलाकारो, अपने रसिकों का झुक कर सम्मान करो। इंडियन पपेट शो शुरू।

(सभी कठपुतलियाँ उछलती-कूदती, नाचने लगती हैं।)

एंकर (राजा से तीखे तेवर में) : आप विधायकों को कठपुतली बनाते हैं या कठपुतलियों को विधायक।

राजा : एक ही बात है। आप कैसे भी घुमा-फिरा कर पूछो। विधायक, विधायक है।

एंकर : आप प्रश्न को टाल रहे हैं। आप कठपुतलियों को विधायक नहीं बना सकते।

राजा : का टाल रहे जी! इन्हें बंधुआ मजदूर कहो, गुलाम कहो, घरेलू नौकर कहो। प्रेस की जो मर्जी हो कहो। इन्होंने संविधान की सौगंध ले कर विधायक होने की शपथ ली है। इन्होंने इनकी आत्मा हमें दी, हमने इन्हें टिकट दिया। अब हमारी आवाज इनकी आत्मा की आवाज है। फालतू बात करते हो।

एंकर : कल शक्ति प्रदर्शन में कितनी कठपुतलियाँ आपका साथ देगी?

राजा (जोर देते हुए) : विधायक कहो, कठपुतली नहीं। पपेट शो है तो क्या हुआ, लोकतंत्र की अपनी मर्यादा है।

एंकर : कितना विश्वास है आपको इन पर?

राजा : देखिए, सब विधायक हमारे साथ हैं। ये क्या, इनके बीबी-बच्चे भी हमारे साथ हैं, गुप्त रिजॉर्ट में हमारी जीत का जश्न मना रहे हैं।

एंकर : साफ-साफ कहिए, तो वे बंधक हैं?

राजा : विपक्षी पार्टियाँ विधायकों को बंधक रखती होंगी, ये सब हमारे बड़े परिवार का हिस्सा हैं।

एंकर : कठपुतलियों को टोपी और कपड़े बदलने में क्या वक्त लगता है? कभी भी क्रॉस वोटिंग हो सकती है।

राजा : ऐसा नहीं है, क्रॉस वोटिंग कैसे हो सकती है। इनके हाथ, पैर, उँगलियाँ, कमर, सिर सब डोर से बंधे हैं। हाईकमान जैसी डोर खींचते हैं, ये वैसा एक्शन करते हैं। ये समर्पित विधायक हैं।

बबली (नारा लगाती है) : हमारा सीएम कैसा हो? शेष कठपुतलियाँ समवेत – राजा भैया जैसा हो।

एंकर : खुशी की बात है, ये बोल रहे हैं! ये कैसे बोलते हैं?

राजा : ये बोलते नहीं हैं, होंठ हिलाते हैं। पर्दे के ऊपर से हाईकमान बोलते हैं और इनके होंठों की डोर खींचते हैं। लोगों को दिखता है कठपुतलियाँ बोल रही हैं।

एंकर : आपको नहीं लगता कि लोकतंत्र के प्रतिनिधि आदमी होने

चाहिए, कठपुतलियाँ नहीं! भले ही यह शो हो। कठपुतलियों ने राजनीति को व्यवसाय बना दिया है।

राजा : आदमी पलट सकता है, काठ के पुतले नहीं। इनकी निष्ठा बेजोड़ है। हमारे शरीर में हरकत हाईकमान द्वारा डोर खींचने से होती है, अन्यथा हम मुर्दे हैं। हम सेवा की राजनीति करते हैं, विचारधारा की सेवा। हम सब विचारधारा की डोर से जुड़े हैं।

एंकर (हँसते हुए) : कठपुतलियाँ और विचारधारा, हा, हा, हा, हा।

प्रवक्ता : ये विचारधारा ही है जो कठपुतलियों को विधायक बनाती है, योग्य बनाती है, लोकतंत्र का रक्षक बनाती है।

एंकर : कठपुतलियों का खेल तो लोककला मानी जाती है, आप इसे लोकतंत्र कैसे कह सकती हैं?

बबली : हम कह सकते हैं, हम कहेंगे। यह हमारा शो है। लोकतंत्र का पपेट शो है।

एंकर : आप लोगों ने एक जैसी वर्दी क्यों पहन रखी है, वर्दी से जनता डरती है।

प्रवक्ता : वर्दी हमारी एकता की निशानी है। पुलिस क्या डराने के लिए वर्दी पहनती हैं? अब लाल बत्ती तो रही नहीं, दूर से देख कर सबको मालूम हो जाए कि ये सत्तारूढ़ विधायक हैं इसलिए हाईकमान ने ये वर्दियाँ बनवाई हैं।

एंकर : आप हर बात में हाईकमान-हाईकमान करते हैं। आपको तो जनता के प्रति जिम्मेदार होना चाहिए।

बबली (ठुनक कर) : सबै एमेले हाईकमान के। पैसा हाईकमान खर्चे, भेंट-बँटाई हाईकमान करावे तो दिन में एक सौ आठ बार हाईकमान नाम जीभ पर आवे। हाईकमान साथ ना दे तो एमेले का भया, सड़क-छाप नेता!

एंकर : आपका हाईकमान कौन है, कोई संघ, संगठन, चाचा-भतीजा, भुआ-दीदी, पप्पू, चरवाहा या कोई और? ये लोग इतना पैसा लाते कहाँ से हैं?

राजा : हाईकमान की लीला हाईकमान ही जाने। वे हमें जो जनादेश देते हैं, हम उसका पालन करते हैं।

बबली : रही पैसे की बात तो, लोग भारी-भरी थैलियाँ ले कर देने के लिए खड़े हैं। जो खुशी से देते हैं हाईकमान रख लेते हैं, जो खुशी से नहीं देते उन्हें हम समझा देते हैं।

एंकर (जोर से) : जनता जानना चाहती है, कौन देते हैं पैसा? उद्योगपति, मल्टीनेशनल कम्पनियाँ, विदेशी पूंजीपति?

राजा : एंकर बाबू, जो आपको देते हैं वे हमें भी देते हैं, वे ही विपक्षियों को देते हैं। जितना बड़ा माथा, उतना बड़ा तिलक। राजनीति में सौजन्य से सब खुश रहते हैं, सर्वे भवन्तु सुखिनः। चलो इंटरव्यू खतम।

(सब कठपुतलियाँ उछलती-कूदती, आदाब और नृत्य करते हुए मंच से ऊपर उठती हैं।)

(राजा फुसफुसाते हुए) : एंकर बाबू, अच्छी टीआरपी मिलेगी। इंतजाम है, दो पैग लगा कर जाना।

(पर्दा गिरता है, दर्शक हाल में खड़े हो कर तालियाँ बजाते हैं, वे और क्या कर सकते हैं!)

केश कला अकादमी

जब मैं बोर हो रहा होता हूँ और ऊर्जा पाना चाहता हूँ तो केश कर्तनालय पहुँच जाता हूँ। यहाँ सब अपने चेहरे को इतने आश्चर्य से देखते हैं, गोया भूत देख रहे हों। अब यह भूतगाह सेलून हो गया है और हमारा नाई हेयर स्टाइलिस्ट कहलाने लगा है। वह बाल कम काटता है, अफवाहें ज्यादा फैलाता है। इस युग में अफवाहें नवजीवन दायिनी हैं। यहाँ दस ग्राम बाल कटें न कटें, परनिंदा सुन–सुन कर किलो भर खून बढ़ जाता है। राजनीति, फिल्मों और क्रिकेट पर लेटेस्ट खबरें यहाँ मुफ्त सुनने मिलती हैं। पूर्व राजा–महाराजा जैसे अपने दीवानखाने में पुराने तीर–तरकश, पोषाकें और शेर की खाल प्रदर्शित करते हुए अपने खानदान का नाम रोशन करते हैं, हमारे नाई ने भी इसलिए एक कोने में अपने पुराने औजार करीने से सजा कर रखें हैं। इनसे वह अपने प्रसिद्ध ग्राहकों के खानदान की कथा सुनाता है।

केश कर्तनालय की दीवारों पर बहुरंगी छायाचित्र चिपके हैं। एक ओर भरत नाट्यम की मुद्रा में सुप्रसिद्ध आइटम स्टार का गर्म चित्र है तो दूसरी ओर हवा में छलाँग मार रहे एक्शन हीरो का पोस्टर है। इन सबके बीच कई कोलाज चिपके हैं। चित्र अंग प्रदर्शन कर रहे हैं पर दीवार का नंगापन छुपा रहे हैं। पिछले दशक में यहाँ भगवान के फोटो चस्पा थे, उन दिनों नाथू नाई भगवान भरोसे कटिंग करता था। अब अयोध्या में राजनीति पसर गई है, भगवान राजनेताओं के भरोसे हो गए हैं तो हेयर कटिंग सेलून से भी भगवान उतर गए हैं।

मैंने उससे पूछा– भगवान के फोटो हटा कर तुमने फिल्मी कलाकारों के फोटो लगा दिए, क्यों भाई! उसने कहा 'यह नई पीढ़ी के रूझान की बात है। केश

सज्जा अब कला है। जैसे मूर्ति कला, चित्र कला और बहुत सारी जरूरी कलाएँ हैं। मैं समकालीन केश कला से जुड़ा हूँ। इस कोलाज में कपूर और खान घरानों की बाल शैली का तुलनात्मक अध्ययन है। उधर हिप्पी, बीटल, जाज आदि विदेशी केश कलाओं के नमूने हैं।' बुद्धिजीवी आधुनिक ट्रेंड के साथ नहीं चले तो गँवार गिना जाता है। मैं यह जान कर अचंभित रह गया कि मेरा नाई बुद्धिजीवी है, और केश कला का इतना ऊँचा मर्मज्ञ है। उसने कहा, चलो कुछ और बुद्धिजीवियों से मिलो। वाकई यह आश्चर्य की बात थी। यहाँ बुद्धिजीवी कम थे और जो थे वे आम आदमी के बीच उठने-बैठने में तौहीन समझते थे।

आम आदमी के बीच बुद्धिजीवी रहने लगे तो उनकी बुद्धि पतित हो जाती है। नाथू ने उन लोगों से परिचय कराया, विप्र जी दो साल में एक बार कटिंग करा पाते थे, इसलिए उनके जो भी बाल थे, लम्बे थे। दूसरे बुद्धिजीवी मधुर जी की दाढ़ी बादशाह बाबर जैसी बाबरी थी। तीसरे बुद्धिजीवी से हाथ मिलाया तो मैं हाथ मिलाता ही रह गया, वे गंजे थे। मैं उत्सुकतावश पूछ ही बैठा, आपका यहाँ क्या काम! उन तीनों बुद्धिजीवियों ने ठहाका लगाया। बुद्धिजीवी बिना बात एक साथ ठहाका लगायें तो समझ लीजिए वे गठबंधन धर्म निभा रहे हैं।

मधुर जी कहने लगे, यहाँ साहित्य-कला अकादमी नहीं है और न ही कॉफी हाउस, तो हम यहीं पर कला चर्चा कर लेते हैं, कला को जिंदा रखना हम कलाकारों का धर्म है। विप्र जी कहने लगे- कला पर विमर्श होना चाहिए। कला चिड़िया की तरह रंग-बिरंगी है और उन्मुक्त भी। इसलिए जहाँ-जहाँ चिड़िया है वहाँ-वहाँ कला है। जहाँ कला है वहाँ घोसले हैं। जैसे चिड़िया-चिड़िया में फर्क होता है, घोसले-घोसले में अंतर है। इस कारण कुछ घोसले प्रतिष्ठान कहे जा रहे हैं और कुछ प्रतिष्ठानों को घोसला भी नहीं कहा जा रहा। आप समझिये।

तभी एक सहायक ने मुझे पुकारा और कहा, आइये साहब आपका नंबर है। मैंने भद्रता से कहा- विप्र जी और मधुर जी मुझसे पहले आये हैं, इन्हें पहले निपटा दो। लोग अपने क्रम से सम्मान पा लें तो कला बंदर-बाँट से ऊपर उठ जाये। एक और ठहाका गूंज गया कर्तनालय में। विप्र जी ने कहा- बंधु आप ही निपट लें, तब तक हम कला पर चर्चा करते हैं और आपका मुफ्त में ज्ञानवर्धन भी। उनके इस ढोंगी भोलेपन पर मैं हँस दिया, अब कला कभी मुफ्त में ज्ञानवर्धन नहीं

करती। मैं बाल कटाने गया था, इसलिए कला के झाँसे में नहीं आया। मैंने नोट किया, सभी भारतीय केश कर्तनालयों में यूरोपियन हेयर कट के पोस्टर लगे रहते हैं। मैंने अपने नाई को एक कट बताते हुए कहा– 'मेरे बाल इस स्टाइल में काट दो।' वह मेरा मुँह ताकने लगा, बोला– सर, आपके देसी चेहरे पर देसी कटिंग ही जँचेगी। यह पोस्टर तो नई स्टाइल देखने भर के लिए है। आधुनिक बाल कला पर सार्थक चर्चा हो इसलिए यह पोस्टर जरूरी है, हमारे रोजमर्रा के जीवन से इसका क्या वास्ता।

उन्हें नाचना नहीं आता था, पर टेढ़े आँगन का पोस्टर जरूरी था। कला को सार्थक बनाने के लिए कलाकार ऐसे ही रिझाते हैं। मैं ठहरा साधारण आदमी, मेरा कला से क्या लेना–देना; मुझे गुस्सा आने लगा। मैंने कहा, एक घंटे से बाल शैली, बाल कला, बाल विन्यास की रट लगा रखी है। इसे हेयर कटिंग सेलून ही रहने दो, यहाँ तो कला मत ठूँसो। मधुर जी उंगली नचाते हुए बोले, इसे बाल कला वीथिका कहिए श्रीमान। बस ग्रांट मिलने वाली है, फिर तो इसे हम केश कला अकादमी बना देंगे।

पीछे से कोई बोला– सरकार मेहरबान तो गधा पहलवान।

गंगा गूंगी है

नमामि गंगे, नमामि नर्मदे, नमामि राजनीति। नदियाँ पूजनीय हैं क्योंकि उनमें हमारी लाशें, धार्मिक आस्थाएँ और गंदगी बेरोकटोक बहती हैं। हम उनमें स्नान कर पाप धोते हैं, कितने चतुर हैं हम कि शरीर के पसीने और मैल को पाप मानते हैं और गंगा में डाल आते हैं। हम नदियों में गंदगी डालने का उत्सव कुम्भ सामूहिक श्रद्धा के साथ मनाते हैं, नागा साधु उनमें डुबकी लगा कर मोक्ष ढूँढते हैं, और राजनेता अपने वोटरों के लिए धर्म का चारा। धन्य हो गंगे, आपमें डुबकी लगा कर हम स्वच्छ हो जाते हैं, आपका क्या होता है महादेव जाने। हम गंगा को माँ मानते है। 'माँ' कहने भर से उसके अंक में मलमूत्र त्यागने का लाइसेंस मिल जाता है। हम इधर अपवित्र त्यागते हैं, वह पवित्रतर हो जाती है। नदियों के प्रति हमारी धार्मिक भावनाएँ बाढ़ के उफान की तरह अंधी हैं। जो फेंकना है, स्वाहा कर के नदी में डाल दो, मूर्तियाँ, अस्थियाँ, राख, फूल-पत्तियाँ, रसायन, पॉलिथीन, स्वर्गीय पशु आदि। हम भोग लगा रहे हैं, सतकर्म कर रहे हैं, नदी नहीं पचा पाए तो हमारा क्या दोष! हमारा अर्पण, शास्त्र और पुराण सम्मत है।

सरकार अपने राजशाही दिमाग से पार्टी हिताय सोचती है, चंदा लुभाय सोचती है। वह गंगा किनारे सार्वजनिक मूत्रालय नहीं बना सकती पर दिल्ली में मंत्रालय जरूर बना सकती है। इसलिए गंगा मंत्रालय बन गया है, वह गंगा की आरती करवा रहा है। पास ही में भारी उद्योग मंत्रालय है, वह आँखे बंद कर भारी मन से परमिट दे रहा है। इस परमिट का दामन थाम कर उद्योगपति नदियों में विषैले रसायन छोड़ सकते हैं। इन दोनों के बीच पर्यावरण मंत्रालय है, गाँधीजी का तीसरा बंदर। भोलाभाला है बेचारा, कहता है– तुम गंदा करो हम साफ करेंगे, तुम

पेड़ काटो हम पौधे रोपेंगे, तुम पाप धोओ हम वोटों का पुण्य कमाएँगे और बुद्धिजीवियों तुम विरोध करो हम उपकृत करेंगे, पुरस्कृत करेंगे।

पिछली सदी तक आदमी गुपचुप, आदमियों और जानवरों को जहर देता था। अब वह खुलेआम जल, जंगल और जमीन को जहरीला बनाता है और इसके जश्न में पर्यावरण दिवस मनाता है। घाटों से फूलमालाएँ और प्लास्टिक की बोतलें साफ हो रही हैं, घाट सुंदर दिख रहे हैं, पर पानी का जहरीलापन बढ़ रहा है। सफाई का कड़वा सच है उद्योगों की सीवर लाइनें। उद्योग मालिक रसायनों का उपचार कराए बिना विषैले पानी को बेधड़क नदी में छोड़ देते हैं, वे जानते हैं नदी गूंगी है। उद्योग निरीक्षक वेतन सरकार से पाते हैं और उद्योग मालिकों से क्या मालूम क्या पाते हैं कि वे उनका मलमूत्र सब पचा जाते हैं।

खरी-खोटी पीएमओ जाने, वैज्ञानिक कहते हैं कि गंगा किनारे जो जल शोधन प्लांट लगे हैं वे अफसरशाही जैसे अक्षम हैं। जो विष और रसायन छँटना चाहिए वे पकड़ में ही नहीं आते, बिना रिश्वत दिए ही गंगा में मिल जाते हैं। कुछ ही प्लांट ईमानदारी से प्रोसेस करते हैं पर वे इतने छोटे हैं कि इतनी बड़ी गंगा को ठीक नहीं कर सकते। सच कहूँ तो उद्योगपति सरकार को दुधारू गाय समझते हैं, सरकार को चारा डालते हैं और सब दूध समेट लेते हैं, जो बचता है वह गोबर और गौमूत्र सरकार सम्हाले। गंगा सफाई मामले का यह पहला कड़वा सच है।

दूसरा कड़वा सच व्यंग्य नहीं, तथ्य बयानी है। गंगा बहुत बड़ी नदी है, सारे साल सरकारी गति से सफाई चलती है, बारिश होती है, बाढ़ आती है। अधिकांश पानी बह कर समुद्र में चला जाता है। जो बच जाता है वह है सहायक नदी-नालों से बाढ़ में बह कर आये पशु तथा गंदगी से युक्त पानी। साल के शेष महीनों में फिर से इकठ्ठा होता है उद्योगों द्वारा छोड़ा गया दूषित जल। इस तरह राम, तेरी गंगा फिर मैली हो जाती है।

मैं नदियों को ले कर उनसे मिला। वे बड़े और जिम्मेदार राजनेता हैं, देश के नीचे बात ही नहीं करते। मैंने सारे देश की व्यथा उनके सामने रखी। वे बोले "जनता ने सिर्फ माँगना ही सीखा है, पहले रोटी, कपडा और मकान माँगती थी, अब साफ हवा और पानी माँगती है, स्वच्छ सरकार माँगती है। माँगने की भी सीमा होनी चाहिए। हम एक-दो पैसे की छूट पेट्रोल में दे सकते हैं, आपका वोट पाने

की लालच में पंद्रह लाख का वादा कर सकते हैं, और कितना झूठ बुलवाना चाहते हैं आप।" फिर वे समझाने लगे "यह संतुलित विकास का युग है। आपको विकास चाहिए तो जंगल काट-काट कर उद्योग लगाना होंगे। रोजगार चाहिए तो अंधाधुंध शहर बनाने होंगे। भले धुएँदार ठीकरा गाड़ियाँ हों, बम्पर-टू-बम्पर ट्राफिक हो, सड़कों पर गाड़ियाँ तो दौड़ाना होंगी। विकास बलि माँगता है हवा की, पानी की, प्रकृति की। विकास, विकास है; गंगा, गंगा है। मैं आज ही बयान दूँगा, बड़ा बयान दूँगा, गंगा तत्काल साफ हो।" बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ उनका बयान छपा। लोग उनका बयान गंगा में डाल गए। बयान ने गंगा को और गंदा कर दिया। उनको भी मालूम था, उनका बयान नासमझ आशावादियों को बहकाने का एक तरीका है। यदि राजनीति इतनी उज्जवल होती तो बैंकों की बजाय नदी-नाले साफ हो गए होते।

जब भी देश को ले कर, प्रशासन को ले कर कोई बड़ी चिंता हो, बड़े बाबू से आप अंदर-बाहर की सटीक जानकारी पा सकते हैं। वे भले आईएएस न हुए हों पर अपने जीवनकाल में दस-बीस आईएएस को चरा चुके होते हैं। वे योजना विभाग के बड़े बाबू हैं, सरकार से सुसंगत ऐसी योजना बनाते हैं कि कोई माई का लाल उस योजना को अंजाम नहीं दे सकता। वे कहने लगे- ''हम योजनाकार हैं, मजदूर नहीं कि सीधे नदी में उतर जाएँ। हमारा काम करदाताओं के पैसों को योजनाबद्ध तरीके से ठिकाने लगाना है। हमने सफाई के लिए बहुत बड़ा सालाना बजट दिया है। सभी विभागीय लोग खुश हैं, सफाई ठेकेदार खुश हैं। एमए-बीए पास बेरोजगार खुश हैं कि नई सरकारी नौकरियाँ निकलने वाली हैं, भले ओहदा सफाई निरीक्षक का ही क्यों न हो, सरकारी नौकरी में माल है!"

"और भईये सुन, हजारों-लाखों सालों की गंदगी गंगाजी-यमुनाजी में पड़ी है, उसे प्रशासन बस पाँच साल में साफ करा दे! क्यों भाई? सफाई करा दी तो खाने-पीने का यह अक्षय स्रोत ही सफा हो जाएगा! गंगा-यमुना साफ हो गई तो राजनीतिज्ञ क्या करेंगे, उनका तो एक जीवंत मुद्दा ही खतम हो जाएगा। हमको क्या कालिदास समझ रखा है कि हम उसी डाल को काट दें, जिस पर हम बैठे हैं। तुम बुद्धिजीवी लोग फालतू में गटरगूँ करते हो, अरे गंगा को शिकायत है तो गंगा बोले।" वे जानते हैं गंगा हमारी आस्था है, हमारी माँ है पर गंगा गूंगी है।

पुरस्कार आलू का बोरा है

इन दिनों सम्मानदाताओं की बड़ी फजीहत हो रही है। लगता है सम्मान देने वालों और सम्मान लेने वालों पर शनि देव की महादशा लगी हुई है। इस साल अंतरंग प्रसंगों के कारण नोबेल साहित्य पुरस्कार स्थगित हो गया, तो अपने यहाँ पचपन कलाकारों ने राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों का ही बहिष्कार कर दिया। पिछले कुछ सालों से कलाकार बड़े संवेदनशील ही गए हैं, वैचारिक हो गए हैं। पहले तो जुगाड़ों और तिकड़मों का ताँता लगा कर राष्ट्रीय पुरस्कार पाते हैं, और जब पुरस्कार मिल जाता है तो उसे वापस कर देते हैं, उसका बहिष्कार कर देते हैं। उन्हें लगता है पुरस्कार पाने से ज्यादा यश पुरस्कार लौटाने में है।

कई दशकों पहले नोबेल पुरस्कार लौटाते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार ज्यां पॉल सार्त्र ने कहा था, पुरस्कार आलू का बोरा है, वे पुरस्कार का बोझ ढोना नहीं चाहते। अपने महामहिम को यह बात पता लगी तो उन्हें बहुत ग्लानि हुई। कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों के प्रायोजक उन्हें आमंत्रित करते थे। बड़े-बड़े कलाकार उनके आगे सिर झुकाते थे, मुस्कुराते थे और फोटो शूट कराते थे। महामहिम को समझ आ गया कि लोग उन्हें हम्माल समझते थे। तीन-चार घंटों का समारोह कर उनसे कलाकारों को आलू के बोरे दिलवाते थे। महामहिम पद की अपनी प्रतिष्ठा है, वे अकेले कितने बोरे उठाएँ! उनका बहुत सारा समय जनतंत्र के बहुरूपिये खा जाते हैं, वे चाहें तो भी कलाकारों के लिए समय कहाँ से लाएँ। उन्होंने आयोजकों से साफ कहलवा दिया था, ऐसे लज्जास्पद कामों के लिए वे एक घंटे के लिए ही आ पाएँगे, और ग्यारह भारी बोरे उठवा देंगे। वे एक-अकेले राष्ट्रपति हैं, एक घंटे में उससे ज़्यादा लोगों को सम्मान देना उनके बस की बात नहीं है।

सम्मान या पुरस्कार कैसे भी हों, बड़े सोच-विचार के बाद दिए जाते हैं। सिर्फ अपने ही लोगों को दिए जाते हैं। और यदि पुरस्कार राष्ट्रीय स्तर के हों तो सम्मानदाता के पैमाने, निष्ठा और समर्पण से जुड़ जाते हैं। पुरस्कार-पाता की निष्ठा असंदिग्ध और समर्पित होनी चाहिए, अनुकरणीय होनी चाहिए। इस कूट वाक्य को मैं एक उदाहरण से समझाता हूँ। बचपन में मैं जब कोई सम्मानजनक काम करता था तो मास्टरजी मुझे कुछ समय के लिए मुर्गा बना देते थे। वे मेरी पीठ पर सम्मानरूपी किताबें रख देते थे। सम्मानमयी बना रहने के लिए मैं पीठ हिला-डुला नहीं सकता था। यथास्थिति में रहो तो अपनी किताबें अपनी, अन्यथा दंड पाओ। आज कलाकार और साहित्यकार की यही स्थिति है। स्थिर खड़े रहो तो आपका पुरस्कार आपका। शाकाहारी सरकार को हिलने-डुलने वाले मुर्गे पसंद नहीं हैं।

सम्मान-प्रार्थियों की लम्बी सूचियाँ हैं, लोग अपने ही हैं, पर बहुत हैं। ये सब वर्षों से उपेक्षित रहे हैं। पिछली सरकार इनके चचेरे भाइयों की थी, उसने वर्तमान सरकार के ममेरे भाइयों को सम्मान दिया ही नहीं। सरकार को नहीं मालूम कि उसके हिस्से में और कितने बसंत लिखे हैं। सत्ता का पतझड़ शुरू हो उसके पहले अपने लोगों को सम्मानित करना ही है। महामहिम ना-नुकुर करें, तो लघुमहिम से सम्मान दिला देंगे। दीर्घ शंका निवारण न हो पाए तो लघु शंका तो हो, लगना चाहिए कि सरकार कुछ कर रही है। सूचना-प्रसारण मंत्रालय ने भी यही किया। मंत्रालय के अफसरों को लगा ये राष्ट्रीय पुरस्कार आलू के बोरे ही तो हैं, कोई भी हम्माल उठा देंगे। फिर उनके पास तो गरिमामयी लोग हैं, केंद्रीय मंत्री हैं, केन्द्रीय राजा मंत्री हैं, सुपर आईएएस सचिव हैं। सब मिल कर एक सौ बत्तीस सम्मान बाँट देंगे। दाता भी उपकृत, पाता भी उपकृत।

सरकारी सोच और सरकारी गणित बाबूनुमा होता है। बेचारा बाबू जो टीप लिखता है, वह टॉप तक ओके-ओके होते जाती है। बीच के सारे अफसर अपनी चिड़िया बिठाने के सिवाय ज्यादा नहीं जानते। और राष्ट्रीय पुरस्कारों के बारे में तो बाबू से लगा कर उपसचिव तक कोई कुछ नहीं जानता। उन्हें कभी कोई सम्मान-पुरस्कार मिला ही नहीं, वे क्या जाने पीर पराई। इधर आलू के बोरे पाने वाले बड़े नाखुश हैं। आलू (सम्मान) तो वे कहीं से भी ले सकते हैं। सब्जीमंडी

में कितने ही कुंजड़े हैं, फेरी वाले हैं जो आलू बेचते फिरते हैं। थोड़े-से पैसे दो और आलू ले लो, ज्यादा पैसे दो और बड़े आलू ले लो। पर उन्हें महामहिम से आलू लेने थे। महामहिम से आलू लेने में जो प्रतिष्ठा है, वह कुंजड़े से लेने में नहीं हैं। खफा हो कर उन्होंने कुंजड़ों से आलू लेने से मना कर दिया, समारोह का बहिष्कार कर दिया। केंद्रीय मंत्री, केन्द्रीय राज्य मंत्री और केंद्रीय सचिव को चुल्लू भर पानी नहीं मिल रहा। अब वे आलू के इन बोरों का क्या करें?

हर कलाकार सम्मान का भूखा तो है नहीं कि जो मिल रहा है उसे सहृदयता से ले ले, उसका भी ठसके मारने को मन करता है। सरकार जानती है ये कलाकार हैं, फिल्मी कलाकार हैं, इन्होंने अपनी जिंदगी कला को दी है। क्या सरकार उन्हें पुरस्कार भी न दे। ये आलू इनकी जिंदगी भर की कमाई हैं। किसी को यह नहीं लगना चाहिए कि आलू में गड़बड़ है, या आलू देने वाले की नीयत में गड़बड़ है। परमश्रेष्ठ हम्माल आलू के बोरे नहीं उठाए तो सरकार क्या करे, कलाकारों का सम्मान होना चाहिए। अब मंत्रालय भारतीय डाक विभाग की स्पीड-पोस्ट से कलाकारों को सम्मान भेज रहा है, लिख रहा है- तेरा तुझको अर्पण।

बापू का आधुनिक बंदर

गुजरात का नाम आए तो सबसे पहले बापू का नाम आता है, फिर फाफड़े, ढोकला, फरसाण और बापू के तीन बंदर। अब हाईटेक जमाना है, बंदर आदमी से ज्यादा बुद्धिमान हो गए हैं। बापू इस समय होते तो तीन की बजाय एक ही बंदर पालते। हम लोग ऐसे गाना गाते, हिंदी में कहते हैं कि– बापू का बंदर, गुजराती में कहते हैं कि– बापूनो वांदरो, बंगाली में कहते हैं कि– आमी तुमारो भालो बाशी। तो चलिए मैं आज आपको बापू के आधुनिक बंदर का तमाशा दिखाता हूँ। हमारे पीछे विधानसभा भवन है। सामने दालान में मदारी डुगडुगी बजा रहा है। उसके पास बंदर थामे जमूरा खड़ा है। बंदर का मुँह लाल है, उसने सफेद जैकेट पहन रखा है।

'मेहरबानो, कद्रदानो! जल्दी से आइए और घेरा बना कर खड़े हो जाइये। आज का तमाशा शुरू होने वाला है। जो एक आदमी की औलाद है, तमाशा खत्म होने के पहले अपनी जमीन नहीं छोड़ेगा। हमारे पेट पर लात मार कर कोई नहीं जाएगा।'

– बोल जमूरे बेटा तू कितने बाप का?

– तीन बाप का उस्ताद।

(जनता हँसती है)

– स्साला मस्करी करता है। अपने उस्ताद से मस्करी करता है। दुनिया एक बाप की तो तू तीन बाप का कैसे रे?

– उस्ताद, गरीब के तीन बाप होवे हैं। एक वो जो बीज डाल के चला

जावे। दूजा वो जो फसल काट के बाजार में बेच आवे। तीजा वो जो पाल–पोस के बड़ा करे। उस्ताद, मेरे माई–बाप, ज्यादा कह दिया हो तो खता माफ हो।

'जमूरा टोपी उलटी करके पैसे माँगने का उपक्रम करता है तो मदारी फिर बोलता है– 'जमूरे, बिना मजूरी किए लोगों से पैसे माँगना पाप है। तू कोई नेता या दरोगा नहीं है। पहले तमाशा बता फिर बख्शीश माँगना।'

'जी उस्ताद, बंदर को डुगडुगी दो और तमाशा शुरू करो।'

मदारी बंदर की ओर डुगडुगी बढ़ाता है। बंदर दो पैरों पर खड़ा हो कर डुगडुगी पकड़ता है और बजाने लगता है। जनता जोरदार तालियाँ बजाती है। जमूरा पूछता है– 'उस्ताद, बंदर का मुँह लाल क्यों है?'

'बंदर में राजसी खून दौड़ रहा है, इसलिए उसका खून लाल है।'

'उस्ताद, इस बंदर का दाम क्या है?'

'बंदर का दाम सौ करोड़ रुपया है।'

जनता विस्मित–सी बंदर को देखती है।

'उस्ताद, इतना महँगा बंदर! इसमें ऐसी क्या खासियत है?'

'जमूरे, यह विधायक बंदर है। जनता को आदमी जात पर विश्वास नहीं रहा तो उसने बंदर को विधायक चुना है।'

जमूरा कलाबाजी दिखाता है और फुसफुसाने का उपक्रम करते हुए जोर से बोलता है।

'उस्ताद, बंदर ने मुँह पर काली पट्टी लगा रखी है, ये बंदर बोलता नहीं है, इसका दाम कम करो।'

'नासमझ जमूरे, बंदर होशियार है इसलिए मुँह पर पट्टी लगा रखी है। बंदर आदमी जैसा गँवार नहीं है कि बिना काम के बोलता रहे। जमूरे सुन, बंदर का मुँह बंद है पर आँखे खुली हैं, कान खुले हैं। वह पूरा घटनाक्रम देख–सुन रहा है, समझ रहा है, बस प्रतिक्रिया नहीं दे रहा।'

'जी उस्ताद, यह बेमिसाल बंदर है।'

मदारी डुगडुगी बजाते हुए बोलता है, 'ओ सरकार बनाने वालों ध्यान से सुनो। हमारे पास एक अदद विधायक बंदर है। दाम सौ करोड़ रुपया। इधर बैंक में

रुपया ट्रांसफर, उधर बंदर ट्रांसफर।'

'उस्ताद, उस्ताद, बंदर का मुँह लाल से काला हो रहा है। दाम कम करने पड़ेंगे।'

'नहीं रे जमूरे, यह राजनीति का विशेषज्ञ बंदर है। अब राजसी खून वाले लोगों की सरकार बनने की उम्मीद कम हो गई है। अब दलित लोगों की सरकार बन सकती है। इसलिए इसने अपने चेहरे को दलित बना लिया है। पर दाम वही है। हाँ साहेबान, पीछे से इशारा मिला। सौ करोड़... एक, सौ करोड़... दो'

'उस्ताद, उस्ताद, ठहरो। बंदर ने मुँह की पट्टी उतार कर कानों पर चिपका ली है।'

'शाबाश! साहबानो, अब विधायक बंदर किसी की नहीं सुनेगा। मार्केट देखेगा और फैसला करेगा। अब किसी भी समय सौदा हो सकता है।'

'उस्ताद, उस्ताद, रुको, भीड़ में दो हाथ खड़े हैं। बंदर को उनसे बात करना है। अब उसने पट्टी अपनी आँखों पर बाँध ली है।'

'जमूरे, बोलीदारों को बुला कर लाओ। अपना बंदर निष्पक्ष है, कानून की तरह अंधा बन कर न्याय करना चाहता है। बोलीदारो आओ, बंदर के कान में रकम बोलो। जिसका ऑफर ऊँचा, बंदर विधायक उसका। कद्रदानो, आखिरी मौका है ये। एक बार बंदर बिक गया सो बिक गया।'

राजनेतानुमा दो बोलीदार आते हैं। एक बंदर के दायें खड़ा है, दूसरा उसके बाएँ। दोनों बंदर के कान में बोलते हैं। बंदर बायीं तरफ वाले का हाथ खड़ा कर देता है।

डुगडुगी जोर-जोर से बजती है। जनता पूछती है, 'बंदर कितने में बिका?'

'कद्रदानो, ये सौदा गोपनीय है। बस, बंदर बिक गया है।'

"अब मदारी और जमूरे के पापी पेट का सवाल है। जा जमूरे, जनता को सलाम कर। अपनी टोपी उलटी कर और बख्शीश माँग। साहबानो, शो खत्म। एक बाप की औलाद हमारे पेट पर लात नहीं मारना। कुछ भी देना, पाँच रुपया, दो रुपया, एक रुपया..."

हर गड्ढे को उसके बाप का नाम दें

कल घूमते हुए मैं एक गड्ढे में गिर गया। लोगों ने खींच कर निकाला, तो मैं वन मानुष लग रहा था। लोग मुझ पर हँस रहे थे, मै लोक निर्माण मंत्री पर हँस रहा था। टीवी चैनल वालों ने लाइव रिकॉर्ड करते हुए पूछा, आप गड्ढे में गिरे हैं, फिर भी हँस रहे हैं?

'पूरा देश गड्ढे में गिरा है, और हम सब हँस रहे हैं।'

रिपोर्टर दर्शकों से मुखातिब हो बोला – क्या आप को लगता है कि देश गड्ढे में गिर रहा है?

'हाँ–हाँ' समवेत स्वर गूँजा।

'देश को गड्ढे में कौन ढकेल रहा है?'

'नेता लोग और कौन!'

'क्या आपने किसी राजनेता को गड्ढा खोदते देखा है?'

'नहीं, मैंने उन्हें कब्र खोदते देखा है?'

'किस की कब्र?'

'देश की कब्र'

इस बार भीड़ ठट्ठा मार कर हँसी। गड्ढे में गिरने पर टीवी वाले इंटरव्यू लेते हैं यदि यह तथ्य मुझे पहले मालूम होता तो मैं बहुत पहले गड्ढे में गिर जाता। एक दर्शक तख्ती बना लाया था, उसने उस पर गड्ढे का नाम लिख दिया– 'पीडब्ल्यूडी मंत्री गड्ढा'। दर्शकों ने डंडे के आसपास पत्थर जमा दिए, कुछ मिट्टी भर दी ताकि यह तख्ती टिकी रहे। इसके फोटो ले कर उन्होंने अपने सोशल

मीडिया पर पोस्ट कर दिए। लोगों ने गड्ढे और तख्ती के साथ धड़ाधड़ सेल्फियाँ लीं। अल्प समय में ट्विटर और फेसबुक पर 'पीडब्ल्यूडी मंत्री गड्ढा' छा गया। भ्रमण को आये सैलानियों को टूरिस्ट बसें 'पीडब्ल्यूडी मंत्री गड्ढा' बताने लगीं। चार-छः महीनों से गड्ढे की जो फाइल मंत्रालय में दबी पड़ी थी, यकायक ऊपर आ गई। रातों-रात गड्ढा भर गया। अब टीवी चैनलों पर भरे हुए गड्ढे का ताजा डामर ब्रेकिंग न्यूज बन गया था।

देश में हर सड़क पर गड्ढे हैं। पीडब्ल्यूडी में जितने कर्मचारी हैं, उनसे कई गुना गड्ढे हैं। उनकी सात पीढ़ियों की कल्याण योजनाएँ इन्हीं गड्ढों से शुरू होती हैं। सड़क निर्माता ठेकेदारों को नागरिकों की बद्दुआएँ आम जैसी मीठी लगती हैं। जितनी बद्दुआएँ मिलती हैं, सब हजम कर जाते हैं और गारंटी के साथ सड़क बनाते हैं, ज्यादा से ज्यादा नौ महीने में गड्ढा होने की गारंटी।

गड्ढे को नाम देना, अब आंदोलन का रूप ले सकता है। इसलिए मैं दिल्ली के गड्ढों के कुछ नाम सुझा रहा हूँ, सक्रिय सड़क पर बड़ा गड्ढा दिखे तो नाम हो 'प्रधानमंत्री गड्ढा'। राजधानी की किसी उपेक्षित सड़क पर गड्ढा हो तो नाम 'राष्ट्रपति गड्ढा'। जिस सड़क का कोई माई-बाप नहीं हो उस पर बड़ा गड्ढा हो जाए तो 'सीएम गड्ढा'। वाशिंगटन डीसी के गड्ढे का नाम 'ट्रम्प गड्ढा' और न्यूयॉर्क के गड्ढे का नाम 'क्लिंटन गड्ढा' रखा तो ये गड्ढे दुनिया भर में चर्चित हो जाएँगे और रातोंरात ठीक भी हो जाएँगे। छोटा गड्ढा समय पर भर जाए तो बड़ा नहीं होता पर उस पर कमीशन क्या बनेगा!

स्मार्ट शहर योजना में आम शहर तो स्मार्ट नहीं हुए पर आम नागरिक जरूर स्मार्ट हो गए हैं। वे समझना चाहते हैं कि विधानसभा मार्ग पर गड्ढा नहीं होता पर जनमार्ग एमजी रोड़ पर बड़े-बड़े गड्ढे क्यों हो जाते हैं। हमने पार्षद से कहा 'महात्मा गांधी रोड़ पर बहुत खराब गड्ढा है, कुछ कीजिए।' पार्षद ने एग्जिक्यूटिव इंजीनियर (ईई) को समस्या बताई तो उन्होंने पलट कर पूछा- नेताजी, चुनावों की घोषणा हो गई क्या? हमें तो पता ही नहीं चला!

गड्ढों की भराई और चुनाव में सीधा संबंध है। कोई कद्दावर राजनेता चुनाव प्रचार करते हुए गड्ढे में गिर जाए तो राजनीति का काला मुँह और काला हो जाए। गड्ढा निर्दलीय है, उसके लिए तो सब बराबर हैं, राजनेता पक्ष का हो या

विपक्ष का, जो चाहे वो अंदर गिर जाए। बुरी बात यह है कि गड्ढे नागरिकों की सुविधा के लिए ठीक नहीं कराए जाते, सरकार का ढिंढोरा पीटने के लिए ठीक कराए जाते हैं। प्रशासन गड्ढों को बड़े बजट से ठीक कराता है जब कोई विदेशी हस्ती की कार उस सड़क से गुजरने वाली हो। प्रधानमंत्री गुजरने वाले हों तो गड्ढा गारे से भरवाना ठीक है, पर वहीं से इवांका ट्रम्प गुजरने वाली हो तो मुख्यमंत्री खुद सीमेंट भरवाते हैं। शायद तब गड्ढे का सौंदर्यीकरण देश का सौंदर्यीकरण होता है।

मैं जिस गड्ढे में गिर कर व्यंग्य बन गया था, वह नवनिर्मित सड़क थी। टीवी रिपोर्टों के अनुसार मुख्यमंत्री ने इसका पिछले महीने ही लोकार्पण किया था। मौसम सूखा रहने की पूरी संभावना थी कि मूसलाधार बारिश हो गई। गड्ढा कोई खबर नहीं था, गड्ढे में गिरते ही रिपोर्टरों के जरिए मुझे टीवी एंकर ने लाइव कर दिया। उनकी दहाड़ से न्यूज-ब्रेक तो हुई, कई टीवी ब्रेक होते-होते बचे। भ्रष्टाचार विरोधी दस्ते ने ठेकेदार को धर-पकड़ा। ठेकेदार गिड़गिड़ाया, उसने बताया कि इंजीनियरों की जीभ बाजार माप से लम्बी थी, वे जरूरत से ज्यादा चाटते गए और डामर कम होता गया। ईई की पड़ताल शुरू हुई तो वे लोक निर्माण मंत्री के चरणों में लेटे थे। इंजीनियर ने दस्ते को बताया- 'मंत्री जी ने मुझ से कहा था पार्टी फंड में डेढ़ गुना इजाफा हुआ है, ईई बनने के लिए बरामदे में लोग ठसाठस खड़े हैं। इशारा समझो। मैंने तो बस इशारा समझा था, उधर चाट कर आता था, इधर खाली कर देता था। सिविल इंजीनियरिंग कोर्स में यह सब नहीं पढ़ा था श्रीमान, गल्ती हो गई!" भ्रष्टाचार विरोधी दस्ता मंत्री जी के पीछे-पीछे मुख्यमंत्री निवास पहुँच गया। यहाँ गड्ढा व्यापम हो गया था। (आप व्यापम का अर्थ नहीं जानते हों तो ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी देखें या इंटरनेट पर सर्च करें, व्यापम इस दशक का सर्वव्यापी शब्द है)। गड्ढे के पितामह मिल गए थे। वे कानून के ऊपर बैठे थे।

जो ढंग से सड़क न बना पाए वह सरकार देश क्या बना पाएगी? उसे नहीं मालूम कि सड़क पर उतरी जनता विपक्ष से ज्यादा ताक़तवर होती है, गड्ढे उसे आगे बढ़ने से रोक नहीं सकते। पर हम कैसे नागरिक हैं। हम सड़क के गड्ढे ही सहन नहीं करते, अर्थव्यवस्था के गड्ढों को सहते हैं, रोजमर्रा के भ्रष्टाचार के गड्ढों को सहते हैं, निठल्ले प्रशासन के गड्ढों को सहते हैं। जनता इन गड्ढों में रोज

गिरती है। गिरती है तो गिरने दो, हम ऐसी सोच वाली सरकारों को सहते हैं। गड्ढे देख कर सरकार मौन रहे तो वह गूंगी है। गड्ढे में गिरती जनता की चीख–पुकार उसे नहीं सुनाई दे तो वह बहरी है। गहरे होते गड्ढों से घायल होता प्रजातंत्र सरकार को नजर नहीं आए तो वह अंधी है। ये गड्ढे सरकार के प्रतिबिंब हैं।

हमें डर है हम इन तमाम गड्ढों का विरोध करेंगे तो असहिष्णु करार दिए जाएँगे। आइए हर गड्ढे को उसके सिरमौर का नाम दें, फिर उसे सोशल मीडिया पर रोशन करें। दुष्यंत कुमार ने कहा था– कैसे आकाश में सुराख़ हो नहीं सकता एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो!

कितने प्रतिशत भारतीय

अपने गेम शो में अभिनेता सलमान ख़ान कभी तो मुस्कुरा कर यह प्रश्न पूछेंगे कि कितने प्रतिशत भारतीयों के पास काला धन है। आप अनुमान लगाइए, तब तक मैं बुनियादी चिंतन करता हूँ। काला धन मतलब क्या, काला धन मतलब वह धन जो सफेद नहीं होता, जिसका आना बाँछें खिला देता है और जब वह जाता है तो अटके काम बना जाता है। वह धन जो सब जगह होता है बस कागज पर नहीं होता।

उदाहरण के लिए नगर निगम के चपरासी के घर आयकर वालों ने छापा मारा, लाखों रुपए नकद, चार-छः कारें, अलग-अलग शहरों में चार-छः कोठियाँ-बंगले, भिन्न-भिन्न बैंकों में लॉकर और फिक्स डिपॉजिट से संबंधित दस्तावेज मिले। बेचारा चपरासी जान-बूझ कर हैरान दिखने लगा। वह सिर्फ फाइल इधर से उधर करता था, बाकी समय बॉस के केबिन के बाहर पहरा देता था। वह सोचने लगा कि उसके पास इतना धन है तो बाबू के पास कितना होगा, इंजीनियर के पास कितना होगा, साहब के पास कितना होगा। ठेकेदार के पास, एमेले के पास, साधू बाबा के पास कितना होगा। वहाँ छापेमारी कब होगी?

आयकर वालों को चपरासी की चिंता से क्या लेना-देना। सरकार जिसके पीछे अपने कुत्ते लगा दे वे वहाँ सूँघ आते हैं, इशारा मिलता है तो वे छापेमारी करते हैं। सामान्यतः सरकार कालेधनियों से गुपचुप शांति वार्ता कर लेती है तो अटैक या छापेमारी करने की नौबत नहीं आती। अब आप समझ गए होंगे कि काला धन क्या होता है और कहाँ होता है। सच कहूँ तो वह त्रिलोकीनाथ जैसा सर्व व्याप्त है और दिखता भी नहीं है।

धन के बारे में सोचना बड़ा आनंददायी है और काले धन के बारे में सोचना प्रभु कृपा के बारे में सोचने जैसा है। प्रभु कृपा पिछले दरवाजे से आती है, जैसे ही प्रभु कृपा होती है, लोग उसे तत्काल छुपा लेते हैं क्योंकि प्रभु को तो बुरी नजर नहीं लगती पर बेचारी कृपा बुरी नजर से बच नहीं पाती। प्रभु कृपा से प्राप्त काला धन शाश्वत वरदान है, जिसके पास है समाज में उसका मान है, प्रतिष्ठा है, स्टेटस है। वह धन इतना काला है कि उस पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ पाता, ईमानदारी, सच्चाई, आदर्श, विश्वास के सारे रंग उसकी कालिमा में दब जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में ऐसे कालेपन को सामाजिक स्वीकृति नहीं है, इसलिए समझदार लोग अपना काला धन विदेशों में भेज देते हैं। स्विस बैंके भले गोरों की हों, उन्हें काला धन खुले हाथों स्वीकार्य है। दलित अस्पृश्य हैं, दलित वोट अस्पृश्य नहीं हैं, दलित स्त्री अस्पृश्य नहीं है और दलित धन तो बिल्कुल भी अस्पृश्य नहीं है। काले धन का यहाँ हवाला करो, वहाँ हवाले हो जाता है। जैसे भारतीय विदेशों में जा कर 'फॉरेन रिटर्न' हो जाते हैं, काला धन विदेश पहुँच कर विदेशी पूँजी और डॉलर बन जाता है। अपनी काली पूँजी दौड़ कर वापस यहीं आ जाती है, विकास दर की मोटी मलाई भारत में जो है।

काला धन हर किसी को नहीं मिलता और न ही दिखता है। सिर्फ बाबा रामदेव के पास दिव्य दृष्टि है तभी तो उन्हें विदेशों में जमा काला धन साफ-साफ दिखता है। वे सरकार को बार-बार आगाह करते हैं कि सब काला धन भारत लाओ, एक-दो भगोड़ों को पकड़ लाओ तो दस-बीस हजार करोड़ रुपए मिल जाएँ। पर सरकार दूरदर्शी है, विदेशों से भगोड़ों को पकड़ लाई और सब काला धन समेट लाई तो इतने धन का करेगी क्या? बुरी राजनीति अच्छे से अच्छे अर्थशास्त्र का भट्टा बिठा सकती है। सरकार के लिए इस शानदार मुद्दे को आम चुनाव तक जिंदा रखना ज्यादा जरूरी है, मुद्दे मरे तो सरकार मरी।

काला धन ही है जो अर्थतंत्र में प्रवाह लाता है। इसके स्पर्श मात्र से फिसड्डी बाबुओं की रगों में खून दौड़ने लगता है। अधमूंदी आँखे मलते हुए अफसर इसे देखकर जागृत हो जाते हैं, और काम में लग जाते हैं। राजनेता इसको सूँघते-सूँघते दूसरे पाले में चले जाते हैं। तनख्वाह के सफेद धन से आप तन ढँक सकते हो, मन में फूट रहे लड्डूओं का कुछ नहीं कर सकते। काला धन हो तो

जीने की ठसक है, कमाने की ललक है। काला धन हो तो अफसर पदोन्नति पाता है, उद्योगपतियों के उद्योग धड़कते हैं, भाई लोगों के धंधे चलते हैं। ये सब शान से गुनगुनाते हैं- हम काले धन वाले हैं तो क्या हुआ, दिल वाले हैं। तुम माँग कर तो देखो हम सब कुछ दे देंगे, बस हमें एक कुरसी दे दो।

नोटबंदी के जुलाब से अर्थव्यवस्था ने खटिया पकड़ ली थी। नोटबंदी से सरकार को बड़ी उम्मीद थी कि काले धन के सर्प डर कर अपने बिल में पड़े रहेंगे और मर जाएँगे। सरकार अपने मदारी अफसरों और बैंकों की काबिलियत पहचान नहीं पाई। उन्होंने रात-दिन एक कर दिए, अपनी रिश्वतिया पुँगी बजाई और लगभग सारा काला धन सफेद कर दिया। अरबपति, खरबपति बनते रहे और बैंकों के सामने लाइनों में खड़े लोग अपने सफेद धन तक पहुँचने के लिए तड़पते रहे। काले धन का कुछ नहीं बिगड़ा, अमीरों का धन तो धन रहा पर आम नागरिक निर्धन हो गया।

सरकार को फिर भी समझ नहीं आया कि सरकारी अफसरों का दिमाग जी-हजूरियों का दिमाग है। उनसे ज्यादा खुराफाती दिमाग काले धन वालों के पास है। उनके पास हर कानून का तोड़ ढूँढने वाले विशेषज्ञ हैं। मसलन, कागज पर वे किसान हैं पर एक फिल्म करने के दस-पंद्रह करोड़ लेते हैं। कागज पर वे फूलों की खेती करते हैं पर उनके रौब से सैकड़ों छात्रों को पिछले दरवाजे से मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिल जाता है। कागज पर वे पहलवान हैं पर सड़कों पर उनकी सौ-सौ ट्रकें दौड़ती हैं। कागज पर वे हैं ही नहीं पर उनकी मशीनें रात-दिन रेत लाद रही हैं, कोयला लाद रही हैं, विधायक लाद रही हैं। कागज पर जनतंत्र है और धनतंत्र से सरकार चल रही है। अब आपको अनुमान लगाने में आसानी होगी। तो बताइए कितने प्रतिशत भारतीयों के पास काला धन है।

दाल-बाटी और चूरमा

दिल्ली में बहुत धुँआ भर जाता है, और आकाश में धुंध। किसी को साफ-साफ नहीं दिखता। राजनीति अंधी हो गई है और कूटनीति बहरी। अर्थनीति, व्यर्थनीति साबित हो रही है। नोटबंदी, कालेधन की नसबंदी नहीं कर सकी है तथा जी एस टी ने कारोबारियों को और छोटा बना दिया है। दिल्ली के मारे सारा देश बीमार हो रहा है। अब नेतागण खिचड़ी पका रहे हैं और देश को परोस रहे हैं, देश कुछ तो ठीक हो।

जब से खिचड़ी को राष्ट्रीय व्यंजन बनाने का विचार खदबदाने लगा है, मेरी राष्टीय भावना मुझे झकझोरने लगी है। मेरी आत्मा कहने लगी है- हे वीर उठो और सरकार को बताओ कि इस देश की विकराल भूख मिटने का रामबाण नुस्खा है दाल-बाटी और चूरमा। कहाँ दाल-बाटी और कहाँ खिचड़ी। कहाँ राजा भोज, और कहाँ गंगू तेली।

हो सकता है, आपने अब तक दाल-बाटी नहीं खाई हो। कभी-कभी भाग्योदय होने में समय लगता है। आप खिचड़ी खाते रहे और बार-बार डॉक्टरों के दरबार में जाते रहे। एक बार तो सोचा होता, देश में बहुत खिचड़ी पक गयी है। रोटी, कपड़ा और मकान के नाम पर खिचड़ी पकी, गरीबी हटाने के नाम पर खिचड़ी पकी, फिर सम्पूर्ण क्रांति की खिचड़ी पकी। भ्रष्टाचार मिटाने के लिए खिचड़ी पकी। जैसे ही खिचड़ी पकी, राजनेता खा गए और पचा गए। जनता तालियाँ बजाती रहीं, देश वहीं रहा। जो चारा पचा सकता है, उसके लिए खिचड़ी पचाना कितना आसान है। काश, आपने दाल-बाटी पकाई होती तो राजनेताओं के लिए उसे गुपचुप पचाना मुश्किल होता।

मैं दाल-बाटी को राष्ट्रीय भोजन बनाने के पक्ष में हूँ। जो लोग संकीर्ण हैं वे दाल-बाटी को राजस्थानी भोजन मानते हैं। हो सकता है दाल-बाटी का विकास राजस्थान में हुआ हो, पर इसका उद्‍भव तो आदिकाल में हुआ है। आदमी ने जब पहली बार आटा बनाया, उसे गूँथा, गूँथ कर गोले बनाये और गोबर के कंडों पर सेंक लिए, धीमी-धीमी आँच पर। सब लोगों ने खाया-पीया और तान कर सो गए। आदिम काल से आज तक आदमी का यही चरित्र है, जब भी मौका मिले, खाओ-पीयो और तान कर सो जाओ। इस प्रवृत्ति को यदि राजस्थानी कह कर सीमित कर दिया तो यह शेष भारत के साथ अन्याय होगा।

मैं दाल-बाटी के उद्‍भव और विकास की बात एक गोष्ठी में रख रहा था तो कुछ लोग जोश में आ गए। कहने लगे दाल-बाटी हमारी आन-बान-शान है। इसे राष्ट्रीय भोजन का श्रेय मिलना ही चाहिए। मारवाड़ी देश के हर कोने में हैं, और जहाँ मारवाड़ी हैं, वहाँ दाल-बाटी है, चूरमा है, गट्टा-कढ़ी है। दाल-बाटी के स्वाद की तरह यह भाव मुझमें स्थायी हो गया। विदेशों में कंडों के अभाव में और दाल-बाटी की व्यापक लोकप्रियता के कारण एन आर आई लोगों ने बाटी को ओवन में पकाना शुरू किया, और यह प्रथा भारत में भी तेजी से फैल गई। अकेले न्यूयॉर्क में ही मेरे सौ से ज्यादा राजस्थानी दोस्त हैं। अधिकांश हीरे के कारोबारी हैं। रविवार-रविवार छक कर दाल-बाटी खाते हैं, खिलाते हैं और चरम सुख पाते हैं। यह सुख ही उनके नेत्रों को इतना दिव्य बनाता है कि वे चमकदार पत्थर और हीरे में अंतर कर पाते हैं। यह स्थिति एंटवर्प में है, लंदन में है और स्विटजरलैंड में भी है। यही स्थिति विश्वव्यापी है।

किसी मशहूर राजस्थानी कवि ने दाल-बाटी खाकर ही कहा होगा- 'दाल-बाटी और चूरमा, जो खाए वो सूरमा।' इस सुप्रसिद्ध कविता में यह तथ्य छुपा है कि सूरमा बनने के लिए दाल-बाटी-चूरमा खाने का कितना महत्व है। राजस्थानी लोग इसलिए सूरमाओं के पर्याय माने जाते हैं।

खिचड़ी में राष्ट्रीय व्यंजन बनने का इतना दम नहीं है। और तो और, जिस उदर में खिचड़ी जाती है, वह उदर थोड़ी ही देर में फिर डिब्बे टटोलने लगता है। 'भूख' असमय जागृत हो जाती है, और बेचारे भारतीयों पर 'भूखे' होने का आरोप सच लगने लगता है। बाटी का अपना बलिष्ठ व ठोस रौबदार रूप है। वह

उदर में आसन ग्रहण करती है तो एक वक्त के पूरे भोजन का अपना कर्तव्य निभाती है। टिकाऊ होने के कारण उत्सवों में देसी आयोजकों की यह पहली पसंद होती है। रसोई से लेकर लोकजीवन में दाल–बाटी ऐसी रची–बसी है कि सड़क किनारे ढाबों में कुछ दाल–बाटी स्पेशियल हैं, तो कुछ मास्टर शेफ अपनी दाल–बाटी की थाली पाँच सितारा होटलों के विशेष आयोजनों में परोसते हैं। चूरमे के लडडू का बोनस तो फिर चाहिए ही। बड़े–बुजुर्ग कहते हैं दाल–बाटी–चूरमे से सिर्फ भूख ही तृप्त नहीं होती, आत्मा भी तृप्त हो जाती है। पितर भी गद्गद् हो जाते हैं।

मुझे लगा हम सब दाल–बाटी प्रेमियों का दाल–बाटी को वैश्विक भोजन का सम्मान दिलाना नैतिक कर्तव्य बनता है। इसलिए मैं राजधानी में अपने एक मित्र से मिला। वे सरकारी थिंक–टैंक में शामिल हैं। वे बड़े–बड़े चिंतकों से छोटे–छोटे मामलों पर गोपनीय राय लेते हैं। मैंने उन्हें राय दी– 'दाल–बाटी को थोड़ा ऊपर उठाओ, दालबाटी को राष्ट्रीय व्यंजन बनवाओ।' वे गंभीर हो गए। वे बोले– 'तुम मित्र हो, इसलिए अंदर की बात बताता हूँ। राजनेता और बड़े अफसर जो भोग लेते–लगाते हैं, वह किसी को दिखना नहीं चाहिए। दाल–बाटी पानी माँगती है, पेट में जा कर फूल जाती है। भक्षक की तोंद फूल जाती है। सहयोगियों और विपक्षियों को खाने वाले का पेट दिखने लगता है। इसलिए हम सलाहकार दाल–बाटी को सपोर्ट नहीं कर सकते।'

वे कहने लगे– 'राज की बात सुनो। सत्ता की भूख चिर होती है, कभी तृप्त नहीं होती। राजनेता और बड़े अफसर खाते हैं तो कभी डकार नहीं लेते। दाल–बाटी खाने के बाद डकार आती है, दाल–बाटी दो–चार घंटे पेट में बैठ जाती है। इतनी देर में तो दस विपक्षी दल वाले और बीस चैनल वाले खोज–खबर लेने आ जाएँ। खाया–पीया तो खिचड़ी जैसा होना चाहिए। इधर खाया, उधर हजम। डिजिटली स्विस बैंक या ऑफ–शोर खाते में पहुँच जाये और रफा–दफा हो जाए।'

मैं भौंचक्का अंदर की बात सुन रहा था। वे बोले– 'दाल–बाटी को राष्ट्रीय व्यंजन बनाने में छिछली राजनीति हो सकती है। खिचड़ी हो या दाल–बाटी, दोनों चीजें ठहरीं शाकाहारी। विपक्षियों को शाकाहारी शब्द से

सांप्रदायिक होने की गंध आ सकती है। उन्हें दाल और खिचड़ी का रंग भी कुछ-कुछ सांप्रदायिक लग सकता है। सरकार देश चलाने के लिए है, राष्ट्रीय व्यंजन बनाने के लिए नहीं। हमें नहीं घोषित करना कोई राष्ट्रीय व्यंजन।'

चलो, जिसकी जो मर्जी हो वह खाए। राजस्थानी जीमण की शान तो कायम है और रहेगी। जिसके घुटनों में जान बची है, वे आज भी आलकी-पालकी की राजयोग मुद्रा में बैठ कर दाल-बाटी का आनंद उठाते हैं। हाँ, जिन जजमानों के लिए दाल-बाटी खाने के बाद उठ कर खड़ा होना मुश्किल है, उनको उठाने के लिए अब स्वयंसेवक नहीं बचे हैं। जजमान ज्यादा हैं, स्वयंसेवक कम। इसलिए दाल-बाटी का लुत्फ आप टेबल-कुर्सी पर बैठ कर उठा सकते हैं।

पिछली सदी में घुमन्तु कबीले होते थे। ऊँटों पर अपने घर-बार लाद कर, गाँव-गाँव जाते थे, डेरा डालते थे और लोहा पीट-पीट कर औजार बनाते थे। उसी आग पर वे दाल-बाटी पका लेते थे। इस तरह राजस्थान से चली दाल-बाटी सारे भारत में फैल गयी। वह सदी गई, और वे बातें गयीं। अब घुमन्तु लोग प्रोफेशनल कहे जाते हैं। ऊँटों की बजाय हवाईजहाज से जाते हैं। देश में कम विदेशों में ज्यादा जाते हैं। वहाँ पहुँच कर अपना लैपटॉप निकालते हैं और दिमाग की दाल-बाटी बनाना शुरू कर देते हैं।

दाल-बाटी गरीबी और अमीरी से बहुत ऊपर है। अमीर मुँह बंद कर दाल-बाटी धीरे-धीरे चबाते हैं तो गरीब उतने ही शौक से अपनी उँगलियाँ चाटते हैं। बदलता है तो बस थाली का रंग-रूप। दाल-बाटी के मूल, आटा और दाल तो सबके लिए वही हैं, इसी धरती के स्नेह से पनपे। दाल-बाटी की बात हो और घी का नाम नहीं आए, तो सारे चमचे नाराज हो जाएंगे। जैसे बिना चमचों के नेताजी की आभा मंद लगती है, बिना घी के दाल-बाटी के सुस्वाद का आनंद नहीं आता। चमचे नेताजी के हृदय में बसते हैं और बाहर भी, ऐसा ही आत्मिक संबंध दाल-बाटी और घी का है।

दाल-बाटी के राष्ट्रीय व्यंजन नहीं बन पाने का दुःख तो है, पर क्या करें। बस, दाल का तीखापन थोड़ा कम हो जाए, तो दाल-बाटी खाने के बाद भी अंग्रेजों की त्वचा गोरी ही रहेगी, लाल नहीं होगी। जयपुर के दाल-बाटी घरानों में अंग्रेजों को दाल-बाटी खाते देखना इतना रोमांचकारी है कि हमारे न्यूज चैनल पूरे दिन ब्रेकिंग न्यूज चला सकते हैं।

हमारा विजन डाक्यूमेंट

अब तक जो सरकारें आईं, सब फालतू थीं। वे प्रजातंत्र के नाम पर मटरगश्ती करती थीं। वे न भी होतीं तो हमारा देश प्रगति करता रहता। हमारा देश प्रगति करने के लिए ही बना है, बस हमें प्रगति के रास्ते की सही दिशा मालूम नहीं है। आजादी के इतने सालों बाद भी हम तय नहीं कर पाए कि देश को किस दिशा में जाना चाहिए। वामपंथी सरकार आती है तो देश को बायें मोड़ देती है, फिर दक्षिणपंथी सरकार आती है तो देश दायें मुड़ जाता है। इस दायें-बायें के चक्कर में आप खुद देख लीजिए हम कहाँ पहुँचे हैं! कुछ दल वक्र चालें चलते हैं, कुछ दल न खुद चलते हैं, न संसद को चलने देते हैं। सरकार सीधे-सीधे चलने वाली होती तो हम कहाँ पहुँच जाते! आज राजनीति चौराहा बन गई है, हर तरफ से जिसे देखो मुँह उठाए चला आ रहा है।

अच्छा है देश में बहुत से लोग मेरी तरह सोचते हैं कि सरकार सीधे-सीधे चलने वाली होना चाहिए। इसलिए मैं अपने साथियों के साथ मिल कर यह घोषणा पत्र लिख रहा हूँ। चुनाव लड़ने के लिए घोषणा पत्र जरूरी है। भैंस पहले घोषणा करती है, फिर खड़ी होती है, तदन्तर पोठा करती है। बैठे-बैठे उत्पादन नहीं होता, इसलिए हम पूरे देश में खड़े हो रहे हैं। हमने बीस साल का रोडमैप बनाया है। मौजूदा पाँच-साला अवधि छोटी होती है, इतने समय में हम अपने परिवार को ही मालामाल कर सकते हैं। देश को मालामाल करने के लिए कम से कम बीस साल चाहिए। आप हमें बीस साल के लिए सत्ता दो और बेफिक्र हो कर सो जाओ। आपकी जरूरत हुई तो हम मध्यावधि के बहाने आपको उठा लेंगे। हमारी मुख्य नीतियाँ कुछ इस तरह हैं :

रोजगार नीति : हम सौ करोड़ नए रोजगार बनाएँगे। भले नाममात्र का काम मिले पर काम सबको मिलेगा, सबको पद मिलेगा। ऑफिस मिले या न मिले पर आपको पैसा मुहैया कराने के लिए बैंकें रहेगी। बैंकों ने इस साल डेढ़ लाख करोड़ रुपया बट्टे में डाला है, अगले साल वे दो लाख करोड़ रुपया बट्टे में डालेंगे, पूरा पचास हजार करोड़ रुपया ज्यादा। एक साल मटरगश्ती के लिए इतना पैसा बहुत है। आर्थिक रूप से जिम्मेदार सरकार ज्यादा ओवरड्राफ्ट नहीं ले सकती। काम-धंधा नहीं हो तो आप अपना आधार कार्ड नंबर डाल कर सीधे रिजर्व बैंक से पासवर्ड की माँग करेंगे, रिजर्व बैंक के पास बहुत पैसा है। वे आपको निराश नहीं करेंगे। नोट छापने की प्रिंटिंग प्रेसों पर उन्हीं का कब्जा है और डिजिटल भुगतान का सारा दायित्व भी उनका ही है। पचास हजार करोड़ रुपये खत्म हो जाएँगे तो हम कुछ और करेंगे, पर हम यह सुनिश्चित करेंगे कि आपके अँगूठा लगाते ही एटीएम अपनी पूरी स्पीड से काम करे।

खाद्य नीति : हम 'भारतीय खाद्य निगम' को 'खाद निगम' में बदल देंगे। एफसीआय ने इतने साल यही किया है। राशन की दुकानें उनका सड़ा-गला अनाज बेचती हैं, जनहित में हम इन दुकानों को बंद कर देंगे। गाँव-गाँव में मॉल खोलेंगे, वालमार्ट खोलेंगे, सारी खरीदी एक जगह से की जा सकेगी। 'मिड डे कार्यक्रम' में सबको दोपहर का भोजन मुफ्त मिलेगा। हम 'मिड डे नैप' का कार्यक्रम चलाएँगे, ताकि सभी लोग सरकारी भोजन कर के स्वास्थ्यप्रद झपकी ले सकें।

शिक्षा नीति : देश को नई शिक्षा नीति की सख्त जरूरत है। पेपर लीक होना बड़ी समस्या है। इसलिए हम सत्र शुरू होते ही छात्रों को पेपर दे देंगे। अध्यापक बच्चों को वही पढ़ाएँगे जो परीक्षा में पूछा जाना है। जो नहीं पूछा जाना है उसे पढ़ा कर बच्चों के दिमाग को ओवरलोड करने से क्या फायदा! शिक्षा वैसे भी रसातल में जा पड़ी है, उसके नीचे और गड्ढा नहीं है, शिक्षा ऊपर उठे न उठे, अब और नीचे तो नहीं जाएगी। माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा सबका जन्म सिद्ध अधिकार है। हम यह सुनिश्चित करेंगे कि स्कूली शिक्षा प्राप्त युवक एक करोड़ तक की संख्या सही से लिखना और गिनना सीख जाएं, दस्तख्त करना सीख जाएं और मोबाइल फोन का अधिकतम उपयोग करने में पारंगत हों। यदि उद्योगपतियों

और बड़े कारोबारियों ने ईमानदारी से पैसा चुकाया तो हर नागरिक के खाते में सरकार द्वारा एक करोड़ रुपये तक जमा कराए जा सकते हैं।

स्वास्थ्य नीति : हम सभी सरकारी अस्पतालों का निजीकरण कर देंगे। रोगियों को दुविधा नहीं रहेगी कि डॉक्टर बाबू कहाँ मिलेंगे! अभी वे डॉक्टर बाबू को अस्पताल में नहीं पा कर उनके घर जाते हैं, हमारी सरकार बनने पर वे सीधे डॉक्टर बाबू के घर पहुँच जाएँगे। सरकार की सारी तनख्वाह बच जाएगी। मरने-जीने का क्या है। जिसने जन्म लिया है, एक दिन उसे पुनर्जन्म लेना ही है। नयी स्वास्थ्य नीति इस उद्देश्य को पाने में सहायता करेगी। हम सभी अस्पतालों का नाम एम्स रखेंगे। गाँव-गाँव में एम्स खोलेंगे। सभी अस्पतालों को अधिकार होगा कि पोस्टमार्टम करते समय मृतकों के कामकाजी अंग निकाल लें। देश की सम्पत्ति को आग में जलाना या कब्र में गाड़ना अक्षम्य अपराध है। देश में जितने झोले हैं, उतने झोला छाप डॉक्टर हैं। कामवाली बाई, बगीचे का माली, रद्दी और कबाड़ा खरीदने वाला कारोबारी सभी डॉक्टर हैं। दस-बीस घरेलू नुस्खे इनके पास हमेशा तैयार रहते हैं। बस कमी है तो मान्यता की। हम उन्हें मान्यता देंगे, मानद मान्यता देंगे। हम ही विश्वविद्यालय बनाते हैं, हम ही मानद विश्वविद्यालय बनाएँगे जो फीस लेंगे और मान्यता देंगे। जो लोग छुप-छुप कर गैरकानूनी ढंग से ये काम करते हैं, वे सब खुले आम और कानूनी ढंग से काम कर सकेंगे। ड्राइव करने के लिए लायसेंस चाहिए, गाड़ी चलाना आना जरूरी नहीं है। गाड़ी चलाओगे तो खुद-ब-खुद गाड़ी चलाना सीख जाओगे। शिक्षा पद्धति को ऐसा ही व्यावहारिक होना चाहिए।

विदेश नीतिः आपको जहाँ जाना हो हम जाने देंगे। अमेरिका का वीसा हमें ही नहीं मिलता है तो हम आपको कैसे देंगे, वह आपको ही लेना पड़ेगा। हम आपको एयर इंडिया से सस्ते टिकट दिलाने का वादा करते हैं। जो टिकट लेगा, उसे सीट जरूर दी जाएगी। विदेश यात्राओं के लिए हम यात्रियों को खड़े-खड़े जाने की इजाजत नहीं देंगे।

रक्षा नीति : आप अपने पड़ौसियों को जानते ही हैं। पड़ोसी भले हरामी हों, उनसे हमारे संबंध अच्छे ही होना चाहिए। हम वही करेंगे, बातचीत करेंगे और संबंध मजबूत बनायेंगे। न कश्मीर देंगे, न अरुणाचल देंगे, न तुगलकों को दिल्ली

देंगे। हम विकसित देशों से पुराने हथियार और हेलिकॉप्टर खरीदेंगे, उनका वे बहुत बार परीक्षण कर चुके होते हैं। जहाँ से ज्यादा कमीशन मिलेगा वहीं से सामान खरीदेंगे, कमीशन का फायदा अंततोगत्वा देश में ही आएगा। मृत सैनिकों के लिए विदेशी कॉफिन खरीदेंगे, सम्मान देने में भव्यता दिखनी चाहिए।

वाणिज्य नीति : हम 'जियो स्टाइल' में कारोबार चलाने को प्राथमिकता देंगे। जियो प्लान सबको जी भर कर मुफ्त डेटा देता है, फिर भी अरबों रुपए कमाता है। धंधा ऐसा होना चाहिए, सबको दिखना चाहिए कि माल मुफ्त मिल रहा है और कमाई गोपनीय हो रही है। हम गोरखधंधा शैली को प्रोत्साहित करेंगे, गोरखपुर शैली को नहीं कि अपनी सालों की सीट गँवा बैठे।

परिवहन नीति : सब खटारा बसें तत्काल प्रभाव से बंद होंगी। सिर्फ वातानुकूलित गाड़ियाँ मान्य होंगी, सबमें फ्री वाय-फाय होना अनिवार्य है। हर सीट से टॉयलेट अटैच होना अपेक्षित है। यात्री एक बार गाड़ी में बैठ गए तो बैठ गए, फिर उठने की जरूरत नहीं है। नागरिकों के बीच-बीच में जाग जाने से देश की प्रगति रूक जाती है।

हम तो जनता के सेवक हैं, जनता जो कहेगी हम वही करेंगे। आप कहेंगे और लोन दो, हम और लोन देंगे। आप कहेंगे लोन माफ करो, हम लोन माफ करेंगे। आप कहेंगे चुल्लू भर पानी में डूब मरो, हम डूब मरेंगे, जल समाधि ले लेंगे, वहीं पर सरकार बना लेंगे और शासन करेंगे। हमें सरकार बनाने से और आपकी सेवा करने से मतलब है। आपकी सेवा करने में जो मेवा मिलता है, उसका स्वाद बार-बार आपकी सेवा करवाता रहेगा। आप हमें सत्ता दो, हम आपको सुख देंगे।

अपनी ताक़त का संज्ञान लें

मैं जेल गया हूँ। चौंकिए मत, मैं किसी अपराध के कारण जेल नहीं गया। रिश्वत लेना, कालाबाजारी करना या तस्करी करना कोई अपराध है क्या! ऐसे दुष्कर्म करने के लिए बिरले लोग ही जेल जाते हैं। मित्र पूछते हैं- 'तुम जेल क्यों जाते हो! कौन-से रिश्तेदार अंदर हैं? क्या तुम्हारी 'जान-पहचान' नहीं है। माना, तुममें आदमी होने के बावजूद तिकड़म लगाने के गुण नहीं है, पर थानेदार या राजनेता की जेब तो गर्म कर सकते हो। तुम बार-बार जेल की हवा खाते हो, हमें यह अच्छा नहीं लगता।' मैं देश-विदेश में रहते कई बार जेलों में गया हूँ। यह मेरा शौक है। जेलों में जा कर मैं कथित अपराधियों से मिलता हूँ, उनको सुनता हूँ और बाहर आ कर हमारी न्याय प्रणाली को कोसता हूँ। मुझे कोसना अच्छा लगता है। भारतवंशी हूँ, मुझे यही आता है, इसी से मेरी पहचान है।

उन दिनों मैं भोपाल में था। वहाँ किसना से मिला। वह ढाबे में काम करता था। वह युद्ध बंदी था, अमीरों और गरीबों के बीच युद्ध का, अगड़ों और पिछड़ों के बीच युद्ध का। उस ढाबे में जहरीली शराब पीने से दो लोग मर गए। ढाबा मालिक ने असली विलायती शराब का एक बॉक्स थानेदार को भेंट चढ़ा दिया और पंचनामे में नकली अद्दे की बोतल किसना के नाम लिखवा दी। असली शराब का मालिक सेठ, और नकली का रखवाला किसना। किसना सिर्फ नौकर था, वह न्याय की तराजू पर चढ़ गया। एक पलड़े में कुछ नोट थे और दूसरे में किसना। नोट किसी की जेब में जबरन घुस कर भारी हो गए और किसना आजन्म के लिए बारहताड़ी में। इस सबसे किसना को ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। पहले वह बचा-खुचा खा कर ढाबे में सो जाता था; अब नपा-तुला खा कर जेल में सो जाता

है। मालिक का ढाबा यथावत चालू है। कानून के सामने सभी समान हैं। जिसका काम दाल-रोटी खाने और चक्की पीसने से हो जाए उसे उसी अवस्था में रखना ही न्याय है।

उसी हफ्ते भोपाल में यूनियन कार्बाइड में गैस लीकेज हुआ। हजारों लोग जहरीली गैस से दम घुटने से मर गए। लाखों लोग बीमार हो गए। कंपनी के मुखिया एंडरसन टालमटोल करते भोपाल आए। भोपालवासियों को उम्मीद थी पुलिस एंडरसन को पकड़ लेगी। दुनिया के बड़े लोकतंत्र में वह प्रजातंत्री सरकार थी या कलंक, क्या मालूम; पर सरकार, अपने विमान से उसे सुरक्षित निकाल ले गई। जेल की सजा तो दूर, उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। अच्छा हुआ, न्याय-नायिका की आँखों पर पट्टी बंधी हुई है, अन्यथा वह भी शर्मसार हो गई होती। एंडरसन ताउम्र निर्दोष रहा, उसे अपराधी सिद्ध कर सकने वाले अफसर बहुत ऊँचे उठा दिए गए। इतने ऊपर कि उन्हें नीचे सपाट मैदान नजर आता था, लाशों पर मंडराए गिद्ध उन्हें कभी नहीं दिखे।

पिछले दिनों में एक सुधार गृह गया। बच्चों की जेलों को सुधार गृह कहना शालीन लगता है। सभ्य और प्रगतिशील समाज में बुराइयों के अच्छे-से सर्वनाम होने चाहिए। यहाँ एक आदिवासी से मिला। वह कंस्ट्रक्शन साइट पर मजदूरी करता था। भीषण ठंड में ठिठुर रहा था तो पास के स्टोर में घुस कर कपड़े और कम्बल चुरा लिए। ऐसे मामलों में पुलिस बहुत मुस्तैद होती है, उसे रंगे हाथों, सबूत सहित पकड़ लिया। पिटाई से उसकी ठंड दूर हो गई और दो-तीन हजार का सामान चुराने के अपराध में उसे जेल की यूनिफार्म मिल गई। इधर माल्या दिन-दहाड़े नौ हजार करोड़ रुपये ले भागा और विदेश में बस गया। नीरव मोदी को घपला-ओलंपिक का यह रिकॉर्ड छोटा लगा, उसने बड़ा कीर्तिमान बनाया और इस खुशी में अमेरिका भाग गया। पुलिस अंकगणित में कमजोर है। उसे हजार, दस हजार, लाख तक की गिनती आती है; करोड़ शब्द का ठोस रूप उसे क्या मालूम! करोड़ों के मामले राजनेताओं का अधिकार क्षेत्र है। इसलिए पुलिस चौदह हजार रुपये और चौदह हजार करोड़ रुपये के घपले में अंतर नहीं समझ पा रही, भगोड़ों को पकड़ नहीं पा रही।

सरकार को महाघपलेबाज भगोड़ों के नए अते-पते मालूम हैं, पर वह

हमेशा की तरह दीनदयालु है। उसके पास घिसा–पिटा बहाना है कि उन्हें पकड़ कर लाने में कानूनी अड़चने हैं। उन पर डंडा उठाने में सरकार ही डरती है तो बेचारे सिपाही की क्या औकात! अन्यथा सरकार चाहे तो भारतीय पुलिस का अदना–सा सिपाही निर्दोष बाबा रामदेव को भेष बदल कर भागते हुए भी पकड़ सकता है। सरकार के अति बद्धिमान अफसर ही ऐसे लचर कानून बनाते हैं, वे अपने मतलब के लिए 'लूपहोल' छोड़ते हैं ताकि अमीरों की हमेशा पौ–बारह रहे और गरीबों पर हमेशा तलवार लटकी रहे। हजारों साल पहले भी न्याय व्यवस्था ऐसी ही थी, कुत्ते की पूँछ जैसी। मुझे इसमें कुत्ते को नहीं घसीटना चाहिए, बेचारे निरीह प्राणी पर अवमानना का मुकदमा चल जाएगा।

मुझे लगता है, विश्व भर की जेलों में कम से कम आधे बंदी तो ऐसे हैं, जिनके अपराध छोटे–छोटे हैं। उनका पहला अपराध यह है कि उन्होंने इतनी छोटी वारदात की। ज्ञानियों ने पहले ही सतर्क किया था– चोर, चोरी से न जाए, हेराफेरी से जाए। छोटी वारदात कर उन्होंने बस अपना ही जुगाड़ किया। 'ऊपरी लोगों' का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा। उन्होंने डकैत उद्योगपतियों जैसा हाथ मारा होता तो भारतीय पुलिस क्या, इंटरपोल भी कुछ नहीं उखाड़ पाती। इतिहास ने हमें सिखाया है कि बिन लादेन या दाऊद इब्राहिम जैसे डॉन को पकड़ने के लिए ग्यारह देश की पुलिस भी कम है। छोटी वारदातें करते हुए पकड़े गए इन बंदियों को पुलिस की सेवा करने का ख्याल नहीं आया। खुद के ही लाले पड़ रहे थे तो वकील खड़ा करने के लिए वे पैसे कहाँ खोदते! गवाह घड़ने, तोड़ने और खरीदने का गोरखधंधा उनकी समझ के बाहर था। वे अरबपति होते तो उनका ड्राइवर गुनाह अपने सिर ले लेता। जब तक सुनवाई पूरी होती विरोधी प्रत्यक्षदर्शी गवाह परलोक सिधार जाते, उनके सारे अप्रत्यक्षदर्शी काले गवाह सफेद हो जाते।

कुछ कीजिए न्यायमूर्ति। विश्व भर की और खास कर विकासशील तथा अविकसित देशों की न्यायपालिकाएं, संज्ञान लेने में विशेषज्ञ हैं। जनता संतुष्ट हो जाती है कि कोर्ट ने संज्ञान ले लिया। भारत में कोर्ट का संज्ञान लेना घोड़े की लीद उठाने जैसा है। लीद उठाई, और पूरे देश में महात्मा गांधी की अस्थियों जैसे बिखरा दीं। देश पवित्र हो गया। जनता ने जान लिया कि कोर्ट ने संज्ञान ले लिया और जरूरी कार्यवाही हो गई। क्या असर हुआ इससे किस को मतलब! भारतीय

संविधान बहुत सशक्त है, दुनिया के श्रेष्ठ संविधानों का निचोड़ है। उसका सारा रस कानून की किताबों में है, और जो लुगदी बची है, कार्यपालिका उसे पाकर बहुत ख़ुश है। कानून की लुगदी, कानून के रस से ज्यादा भारी है।

मेरे एक मित्र न्यायाधीश हैं। वे दो नंबर भी जाते हैं तो लोग कहते हैं- माननीय दो नंबर गए हैं। एक बार मेरे मुँह से भी निकल गया- माननीय, तो वे सकपका गए। पूछने लगे- कहीं मैं व्यंग्य तो नहीं कर रहा। मैं कैसे कहता कि व्यंग्य तो तत्काल होता है, न्याय की तरह दस-बीस साल बाद नहीं होता। वे सुबह की नर्म धूप सेंक रहे थे, कहने लगे- स्टेनो का इंतजार कर रहा हूँ, फैसले डिक्टेट करवाना है। चलिए, कहीं तो वे डिक्टेटर हैं। वे रुआँसे हो कहने लगे- बहुत काम पड़ा है। तारीख पे तारीख, तारीख पे तारीख, बहुत वर्क लोड है। काम की तादाद को लेकर सी जे तक की आँखों में आँसू हैं।

मैं हतप्रभ हूँ। उनके संज्ञान में लाना चाहता हूँ कि आम आदमी ख़ुद बिक भी जाए तो वह कार्यपालिका को खरीद नहीं सकता। अफसरशाही अमीरों के पैरों की जूती है। आपके पास अमीरों का आना-न आना, उनके अपने फायदे-नुकसान के गणित पर टिका है। लेकिन आमतौर पर आपकी चौखट पर जो आता है, उनमें बहुत से लोग वंचित हैं, पीड़ित हैं। उन्हें न्याय की आपसे ज्यादा, सख्त और शीघ्र जरूरत है। आप अपनी ताक़त का संज्ञान ले लें बस।

आते हो क्या व्यंग्यकार बनने

प्रिय मित्र,

बहुत अच्छा हुआ कि पकौड़ा उद्योग को लाभकारी उद्योग का दर्जा मिल गया, आशा है इससे आप सबका जीवन–यापन अच्छी तरह से हो जाएगा। यह जानकर और भी अच्छा लगा कि अब आपके पास समय ही समय है, और इसमें आप कोई रुतबे वाला काम करना चाहते हैं। आपने हास्य–व्यंग्य उद्योग के बारे में जानना चाहा है, यह खुशी की बात है। इन दिनों हास्य–व्यंग्य की बड़ी माँग है। व्यंग्य लिखने के लिए धाँसू और नए विषय तेजी से मिल रहे हैं। अच्छे व्यंग्यकारों का टोटा है। इस काम में रुतबा है, जिसकी टोपी उतारना हो एक वाक्य में उतार सकते हो। टोपी पहनाने का काम साहित्य की दूसरी विधाओं में होता है।

अपने आपको कविराज कहे जाने वाले कई लोग पान की दुकान पर मिल जाएँगे। इन में से ज्यादातर कवि नकारात्मक ऊर्जा फैलाते हैं। उनकी कविताएँ लोग नहीं सुनते हैं तो वे समीक्षक बन जाते हैं। अन्य साहित्यकारों को डराने के लिए वे खुद को आलोचक भी कहते हैं। वे कहेंगे "यह तो टाइम पास काम है। सारे सेल फोन हास्य–व्यंग्य की उत्पादकता बढ़ाने में लगे हैं। हँसी का एक फव्वारा छोड़ो, सौ लोग इसे तुरंत फॉरवर्ड कर देते हैं और शाम तक हजार लोग इसे लाइक कर लेते हैं। बहुत से लोग चुटकुलों की टाँग तोड़–तोड़ कर व्यंग्यकार बनना चाहते हैं।" वे आपको सुझाव देंगे कि "व्यंग्यकार बनने के लिए कोई योग्यता जरूरी नहीं है। आदमी व्यंग्यकार ही पैदा होता है। जो गाली दे सकता है, वह व्यंग्य कर सकता है। जो थोड़ा–सा खिसक जाये वो व्यंग्यकार है। जो बेतुका और अश्लील लिख कर लोगों को हँसा सके वह हास्य–व्यंग्य कर रहा है।" ऐसे आशुकवियों और जन्मजात स्वनाम धन्य साहित्यकारों को दूर से ही

प्रणाम कर लें। इनका संक्रामक रोग आपको नहीं लगना चाहिए।

हम ऐसे व्यंग्यकर्म की बात कर रहे हैं जहाँ व्यंग्यकार, व्यंग्य को गंभीरता से लेते हैं। फूहड़ द्विअर्थी संवादों को व्यंग्य नहीं समझ लेते। हम कालिदास की तरह बुद्धिमान और कालजयी रचनाकार हैं। जिस डाल पर बैठते हैं, उसे धीरे-धीरे काटने का उपक्रम करते हैं। खुद पर हँसते हैं और खुद पर ही व्यंग्य करते हैं। जिस गड्ढे पर मन आ जाए उसे ससम्मान खोदते हैं और तालाब बना देते हैं। हम जितने तालाब बना पाए हैं, डूबो कर मारने वाले लोगों की संख्या उनसे बहुत ज्यादा है। बस, हम पूरी ताकत से तालाब खोदे जा रहे हैं। आम चुनाव जल्दी आने वाले हैं। राजनैतिक दल और निर्दलीय अपनी योजनाएँ घड़ रहें हैं। उनका पर्दाफाश करने के लिए हमें और साथी व्यंग्यकारों की जरूरत है जो शब्दों से गहरी चोट मार सकें और सोते हुए जनमानस को कुंभकर्णी नींद से उठा सकें।

आज सवेरे से मेरी ज्ञान बाँटने की इच्छा हो रही है। जो अपना नहीं है उसे बाँटने में बड़ा आनंद आता है। जो व्यंग्यकार बड़े हो गए हैं वे मुफ्त में अपना ज्ञान नहीं बाँटते। मैं सालों से रेलवे जंक्शन पर पहुँचने की फिराक में लूप लाइन में पड़ा हूँ इसलिए अपना ज्ञान मुफ्त में बाँट रहा हूँ। ज्ञान बाँटने से बढ़ता है, इसलिए बाँट रहा हूँ। मैं ज्ञान बाँट-बाँट कर बहुत-से ज्ञानवान फॉलोअर बनाना चाहता हूँ। कभी-कभी डोज बढ़ने से लाइलाज बीमारी ठीक हो जाती है। मेरा मानना है कि यदि ज्ञानवान व्यंग्यकारों की तादाद बढ़ गई तो दुनिया बेहतर हो सकती है। यदि आप व्यंग्यकार बनना चाहते हैं तो पहले यह समझ लें कि आखिर व्यंग्यकार होता क्या है, कैसा होता है!

व्यंग्यकार होता तो आदमी ही है, पर वह आदमी की एक दुर्लभ प्रजाति है। एक चापलूस ढूंढो तो हजार मिल जाते हैं, पर हजार लोग ढूंढो तो एक व्यंग्यकार मिलता है। इसके बहुत सीमित संस्करण छपते हैं। यह बहुत सुस्त किस्म का अल्हड़ प्राणी होता है। कुछ काम-वाम नहीं करता है और जब कोई काम करने को कहे तो अपनी संचित ऊर्जा से उसे लपेट देता है। उसकी आत्मा बहुत भोली-भाली होती है, इसलिए वह गोबर-गणेश होता है। शरीर को तोड़-मरोड़ कर जब नृत्यांगना नाचती है तो तालियाँ बजती हैं। व्यंग्यकार आत्मा को निचोड़ कर लिखता है तो व्यंग्य उपजता है। जब उसके व्यंग्य निशाने पर लगते हैं तो घायल लोग आह भरते हैं और शेष लोग वाह-वाह करते हैं, ठहाके लगाते हैं। व्यंग्य की सार्थकता तभी है जब आह भरने वाले घायल, कलमकार की

कलम तोड़ने की इच्छा करें और वाह-वाह करने वाले उसकी कलम चूम लें।

मूल रूप से व्यंग्यकार निडर होता है। वह जिनसे डरता है उन पर व्यंग्य ही नहीं करता। इसलिए व्यंग्यकार खुद पर, अपनी निरीह पत्नी पर, हारे हुए नेता पर और रिश्वत लेते पकड़े गए अधिकारी पर व्यंग्य करता है। शहर कोतवाल या एसपी पर व्यंग्य नहीं करता। चोर, डाकू, आयकर अधिकारी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते; उसके पास क्या है सिवाय आठ-दस डायरियों के, जो ले जाए वही फँस जाए। हमारे पीएम, सीएम आदि बहुत सहिष्णु हैं। साहित्यिक भाषा में धूर्त व्यक्ति को सहिष्णु कहते हैं। आप जितना चाहें उन पर व्यंग्य कर सकते हैं। चट्टान पर कितना ही कपडा मारो, फटना कपड़े को ही है। व्यंग्यकार बन कर आपको अपने ही कपड़े फाड़ना होते हैं। हाँ, चट्टान को साफ-सुथरा रखने में जो आनंद है, वह व्यंग्यकार का है। बाबूओं और छोटे अधिकारियों पर व्यंग्य कस कर व्यंग्य का कद घटाने की जरूरत नहीं है। कनिष्ठ लोगों में सहनशीलता की कमी होती है, उनके पास धन-दौलत की कमी होती है। वे व्यंग्य की मार नहीं झेल सकते। व्यंग्य पढ़ने-सुनने के बाद जो भद्र रह सके व्यंग्य उसी पर साधना चाहिए।

अब आपने व्यंग्यकार बनने का मन बना लिया हो तो मुद्दे की बात भी नोट कर लें। सबको हँसाना जोकर का काम है, व्यंग्यकार का नहीं। शब्दों में क्या रखा है? आप शब्दों को कैसे रखते हो, उसमें सब रखा है, व्यंग्य रखा है, कविता रखी है। आप तो शब्दों का पराक्रम परखो, व्यंग्य स्वतः पैना हो जाएगा। व्यंग्यकार को चीखने-चिल्लाने या मटक-मटक कर श्रोताओं को रिझाने की जरूरत नहीं होती। आपके शब्दों में दम हो तो श्रोता का दिमाग खुद ही टनटनाटन बजने लगता है।

कम लिखा ज्यादा समझना, समझ नहीं आये तो फिर-फिर पढ़ना, पर व्याख्या मत करना। व्याख्या करने में व्यंग्य सपाट हो जाता है। आशा है, सफल व्यंग्यकार बनने के लिए आप खुद को जोरदार धक्का लगाने को तैयार हो। वरिष्ठ व्यंग्यकार अपनी सफलता के राज भी हमें बताने वाले हैं। हम उनके आभारी होंगे और जब वे नहीं रहेंगे तब भी उनके गुणगान गाते रहेंगे। वरिष्ठ व्यंग्यकार मिलें तो उन्हें मेरे ईमेल पते पर संपर्क करने का आग्रह करें। शुभ कामनाओं के साथ, आपका अपना साथी।

लगे रहो मेरे भाई

सुबह से डेटा आ रहे हैं। थोक में आ रहे हैं पर मुफ्त में आ रहे हैं और मेरे मोबाइल में भरते जा रहे हैं। सरकारी खजाने में टैक्स भरते जाओ, भरते जाओ, पर उसका पेट नहीं भरता। मेरे मोबाइल फोन का उदर भी डेटा के लिए हमेशा खाली रहता है। यह तो अच्छा है डेटा किलोबाइट में हो या मेगाबाइट में, उसका वजन मिलीग्राम भी नहीं होता। डेटा अपनी हीरोइनों की तरह स्लिमफिट है। इसलिए हर कोई अपने मोबाइल फोन को हमेशा अपने करीब रखता है।

मेरे मोबाइल में बहुत सारे ऐप हैं। ऐब नहीं जनाब, ऐप। जैसे वाट्सऐप। वाट्सऐप और अंग्रेजी में एक से दस तक के अंक सबको आते हैं। शिशु माँ बोलने के पहले वाट्सऐप और दस तक के अंक समझने लगता है। जो लोग अन्यथा अंगूठा टेक हैं, मोबाइल उनके पास भी है और वे वाट्सऐप और अंग्रेजी के नंबर समझते हैं। साक्षरता का वाट्सऐप ने बेमिसाल प्रचार-प्रसार किया है। बटन दबाओ और साक्षर हो जाओ।

वाट्सऐप से महान ऐप है फेसबुक। यहाँ जितना लादना हो, लाद दो। शालीन भाषा में कहें तो 'पोस्ट' कर दो। मेरे एक मित्र फेसबुक पर हर घंटे पोस्ट करते हैं। जहाँ-कहीं जाते हैं एक पोज़ मारते हैं, और फेसबुक पर शेयर कर देते हैं। आपने भेड़ों के झुण्ड को जाते देखा होगा। भेड़ जिस रास्ते जाती है, लीद करती जाती है, ताकि लोग जान सकें वह किधर-किधर गई। मेरे मित्र भी फेसबुक पर इसी तरह फोटो छोड़ते जाते हैं। फेसबुक ने हर आदमी को बिना किसी टंटे के महान बना दिया है। अब उसकी सचित्र आत्मकथा नेट पर है। बायोपिक नेट पर है, 'फॉलो' करने वाले लोग हैं। महान बनने के लिए डॉ. कलाम अखबार बेचते

थे, मोदी जी चाय बेचते थे, अपुन को तो बस पोज़ मारना है और पोस्ट करना है। शुक्रिया फेसबुक, सच्चा समाजवाद लाने के लिए।

पर मुझे यूट्यूब ज्यादा पसंद है। आपको जो करना सीखना है, सीख लो। जिसको उड़ाना है, उड़ा दो। देश को कैसे झाड़ू लगाना है तो प्रधानमंत्रीजी आपको सिखायेंगे। मेरे मित्र बात कर रहे थे, मेरे मुँह पर फव्वारे जैसी बूंदे आ रही थीं। वे बोलते थे तो थूक उड़ाते थे। मैंने यह तथ्य वीडिओ से जाना, जो रतन ने यूट्यूब पर डाल दिया था। रतन, हमारे स्टॉफ ड्राइवर का नाम है। उसका यह वीडिओ वायरल हो गया। मुख्यमंत्री जी के निजी सचिव का फोन आया। उन्होंने कहा– 'मुख्यमंत्रीजी आहत हैं। आप यह वीडिओ तुरंत हटाइए। आपका दोस्त उनकी नकल उतार रहा है।' मैंने रतन को खूब डाँटा। उसने मोबाइल निकला और बोला– 'सर जी, पहचानिए खुले में सू–सू कौन कर रहा है।' भगवान कसम, मैं छोटा अफसर हूँ। बॉस के पीछे चलता हूँ। उनका पिछवाड़ा पहचानने से कैसे मना कर सकता हूँ।

मेरे फोन पर रतन ने स्नैपचैट इंस्टाल कर दिया है। पर मैं इसे खोलने से डरता हूँ। खोलते ही सफेद भूत आता है। रतन पद्मावत फिल्म देख नहीं पाया, पर उसने स्नैपचैट पर अपना फोटो डूडल कर दिया है। शाहिद कपूर की जगह वह राजा रावल रतन सिंह बन गया है। पद्मावती वही है, दीपिका। उसने वहाँ सन्देश लिखा है 'मेरा जन्म सफल हो गया।' यह फोटो वायरल हो गया है। आज उसने ऑफिस से छुट्टी ले ली है। करणी सेना वाले उसे खोज रहे हैं।

ऐप्स तो बहुत सारे हैं, पर टाइम नहीं है। मुझे ट्रंप को भी रिट्वीट करना होता है। ट्रंप नाश्ता करते, खाना खाते और सोते हुए ट्वीट करते हैं। बाकी समय वे प्रेसिडेंट–प्रेसिडेंट खेलते हैं। मैं रिट्वीट इत्मिनान से करता हूँ। टॉयलेट सीट पर बैठ कर मैं पेट को ट्वीट करता हूँ, और ट्रंप को रिट्वीट करता हूँ, सब कुछ सहज निकल जाता है। कुछ अभिनेता, अभिनेत्रियाँ और राजनेता मुझे बिनमाँगे ट्वीट भेजते हैं। अदना–सा लेखक हूँ, सबका मान रखना पड़ता है।

मेरे अफसर किसानों को भाव नहीं देते, पर मुझे भाव देने लगे हैं। हुआ यूँ कि पिछले दिनों एक किसान ने आत्महत्या कर ली। वोट खरीदने वाले प्रजातंत्र में इससे क्या फर्क पड़ता है। सरकार के खिलाफ जन–आंदोलन की खबर आई।

बड़ी रैली को विफल करने के लिए विभागीय मीटिंग हुई। मैंने शरीफ राय देते हुए कहा– सर, यहाँ से आधे किलोमीटर दूर रैली–मार्ग पर हॉट–स्पॉट बनवा देते हैं। रैली वहाँ तक आएगी तो खबर फैला देंगे। यहाँ वाई–फाई फ्री है, शानदार स्पीड। वही हुआ, रैली वहीं थम गई। सब अपने मोबाइल फोन पर लगे थे। फोटो खींच रहे थे, खिंचा रहे थे। विरोध के नारे फुस्स हो गए और क्रांति के लिए उठने वाले हाथ बटन दबाने लग गए। युवा पीढ़ी को अहिंसक तरीके से बरगलाना कभी इतना आसान नहीं था।

कल मैंने वाट्सऐप पर पाँच सौ पेज लंबी कविता लिख मारी। लिखा तो एक ही पेज था, पर उसे उत्तम बनाने के लिए वरिष्ठ कवियों से सुझाव माँगे। यहाँ कवियों के कई ग्रुप हैं, सब वरिष्ठ कवि हैं। सब कवि मेरी कविता पर पिल पड़े। कविता, रायता हो गई, फैलती गई। मैंने वाट्सऐप का नोटिफिकेशन बंद कर दिया है। पर संशोधन चल रहे हैं, प्रति–संशोधन आ रहे हैं। वहाँ घमासान मचा है।

आज बेटे ने पूछा– 'पापा, आपके पास कितना बैलेंस है?' मैं सकते मै आ गया। बेटा संपत्ति का खुलासा क्यों माँग रहा है। मैंने डरते–डरते पूछा– बेटे तुम्हें कितना चाहिए। उसने कहा– सौ जीबी। जीबी मतलब गेगाबाइट। मेरी साँस में साँस आई। मैंने ऑनलाइन स्टोरेज की लिंक्स भेज दीं और कहा– इनसे दो सौ जीबी जगह मिल जाएगी, खुश। मन में कहा– ये ऑनलाइन स्टोरेज भारतीय खाद्य निगम जैसे तो हैं नहीं कि अनाज बारिश में भींगता सड़ता रहे और जनता अनाज के लिए तरसती रहे। डेटा मुफ्त, ऑनलाइन स्टोरेज भी मुफ्त। बस स्टोर करते रहो, डेटा सुरक्षित।

अभी रतन का फोन आया। बोला– 'सर जी, एक लिंक टेक्स्ट की है। फटाफट सीएम ऐप इंस्टाल करिये और अपने आधार से लिंक कर दीजिये। आपको पाँच हजार रुपये मिलेंगे, और मुझे एक हजार। रुपये आपके बैंक अकाउंट में सीधे ही, तत्काल जमा हो जाएँगे। एक रात में लखपति बन सकते हो सर जी।' मैंने अभी यह ऐप इंस्टाल कर लिया है, और अपने सबको सूचना दे रहा हूँ। लगे रहो।

वे धन्यवाद नहीं ले रहे

मैं अपने समय के प्रतिष्ठित होते–होते बच गए व्यंग्यकार के साथ बैठा हूँ। उनका जेनेरिक नाम व्यंका है, ब्रांड नेम बाजार में आया नहीं, इसलिए अभी उनका नाम बताने में दम नहीं है। यह चर्चा मोबाइल पर रिकॉर्ड हो रही है।

प्रश्न : व्यंका जी, कभी आपका नाम हो जाए और आप अमर हो जाएँ, उसके मद्देनजर मैं जानना चाहता हूँ कि आपका जन्म कहाँ और कब हुआ?

उत्तर : धर्म जी, आपका आभारी हूँ, आपने सही समय पर मेरी प्रतिभा को परख लिया। मैं पहली बार इंटरव्यू दे रहा हूँ, कोई भूलचूक हो जाए तो ठीक कर लें। मेरा जन्म घर पर हुआ। उस जमाने में दाई घर पर ही प्रसव करा देती थी। सरकारी अस्पताल डॉक्टर साब के घर से ही चलता था, तो लोग छोटी–छोटी बातों के लिए फीस नहीं देते थे। जन्म कब हुआ, इस पर बड़ा विवाद है। घर में घड़ी नहीं थी। पिताजी कहते हैं 'सूरज भरपूर चढ़ गया था, मैं उठ गया था, तब यह जन्मा।' माँ कहती है 'मैंने जन्मा तो मैं जानती हूँ, तब पौ भी नहीं फटी थी, तुम तब भी खर्राटे भर रहे थे जब यह जन्मा।' अप्रैल की पहली तारीख को मेरा जन्म दिवस विश्व भर में हर्षोल्लास से मनाया जाता है।

प्रश्न : आप किस तरह के लेखक हैं और आप क्यों लिखते हैं?

उत्तर : मैं बहुत अच्छा लेखक हूँ। मित्रगण मुझे लेखक मान लेते हैं। संपादकगण तटस्थ हैं। बस, लोचा आलोचकों के साथ है। वे गिनीज बुक जैसे हैं, लेखकों की सूची में मेरा नाम नहीं डाल रहे। जाकी रही भावना जैसी। मैं क्यों लिखता हूँ, यह प्रोफेशनल प्रश्न है। कम्प्यूटर पर सॉलिटेयर खेलने से तो लिखना

अच्छा है। सॉलिटेयर खेलते श्रीमती जी देख लें तो आदिकालीन काम पकड़ा देती हैं।

प्रश्न : आदिकालीन काम मतलब?

उत्तर : आदिकालीन काम मतलब जो काम आदिकाल से हो रहे हैं, जैसे झाड़ू लगाना, बर्तन धोना, पोंछा मारना, जाले साफ करना। मुझे समकालीन काम करना पसंद है।

प्रश्न : समकालीन काम मतलब?

उत्तर : अरे यार, आप किस दुनिया में रहते हैं। समकालीन काम मतलब फेसबुक, वाट्सऐप, ट्विटर, यूट्यूब, इंस्टाग्राम आदि। और भी हैं, पर मैं इन पर ही इतना बिजी रहता हूँ कि मत पूछो।

प्रश्न : लोग आपको फोगटिया लेखक कहते हैं, इस बारे में आप क्या कहेंगे?

उत्तर : जो इस तरह का पतित लांछन लगाते हैं, उन्हें खुद के गिरेबान में झाँकना चाहिए। हिन्दी की समृद्ध साहित्य परम्परा लघु पत्रिकाओं से है। वे आप को छाप ही दें तो आपको उनका आभारी होना चाहिए। मानदेय लेना–देना हमारी संस्कृति नहीं है। मुफ्त में लिखने वालों को फोगटिया नहीं कहते, उन्हें साधुवादी कहना श्रेयस्कर होगा।

प्रश्न : आप पत्र-पत्रिकाओं में कम, अपनी ई-पत्रिकाओं व ब्लॉग्स पर ज़्यादा हैं। कोई खास वजह?

उत्तर : मुद्रित पत्र–पत्रिकाओं से वृद्ध साहित्यकार रोमांस लड़ाते हैं। यह नई टेक्नॉलॉजी का जमाना है। अब छपने के लिए किसी का मोहताज होने और इंतजार करने की जरूरत नहीं। लिखो और तत्काल अपने ब्लॉग पर पोस्ट कर दो, फेसबुक पर शेयर कर दो। मेरे पांच हजार फॉलोअर हैं, घंटे भर में दो सौ लाइक आ जाते हैं।

प्रश्न : लोग आप पर व्यंग्य करने के लिए फॉलोअर बनते हैं, आपके व्यंग्य पढ़ने के लिए नहीं। 'लाइक' का क्या, लोग बिना पढ़े ही लाइक कर देते हैं।

उत्तर : यह सरासर गलत है। आपको अपने पाठकों पर विश्वास होना चाहिए। वे लाइक करते हैं तो सब सोच समझ कर करते हैं। मैं उनको लाइक करता हूँ तो वे मुझे लाइक करते हैं।

प्रश्न : आपका प्रतिनिधि संकलन या कोई किताब देखने को नहीं मिली।

उत्तर : कई प्रकाशक अप्रोच करते हैं, पर मैं स्थापित प्रकाशक को ही मौका देना चाहता हूँ। चाहे वे जमानत जब्त होने के चक्कर में कुछ डिपॉजिट या सहयोग राशि ले लें। 'दानपीठ' वालों से सालों से बात चल रही है, वहाँ बहुत-से लेखक प्रतीक्षा सूची में हैं, मैं भी हूँ। नाम तो वहीं होता है। आगे चलकर पुरस्कार भी वहाँ से लेना है।

प्रश्न : आप जीवन-यापन के लिए क्या करते हैं। लोग कहते हैं, आप लिखते कम, झक ज़्यादा मारते हैं?

उत्तर : यह कैसा प्रश्न है? हिन्दी के लेखक को कुछ न कुछ तो करना पड़ता है। आम लेखक का जीवन-यापन लिखने से हो सकता है क्या? जलने वालों का क्या है, सभी सरकारी नौकर झक मारते हैं, मैं अकेला थोड़े ही हूँ।

प्रश्न : रोज ही आपके छोटे-छोटे पोस्ट, कॉपी-पेस्ट और टैग शैली में आते रहते हैं। आप उपन्यास क्यों नहीं लिखते?

उत्तर : उपन्यास दिखने में ठीक लगता है, पर हिन्दी के पाठकों में उपन्यास पढ़ने का धैर्य है क्या? फिर, उपन्यास लिखने और उसे समेटने में बहुत समय लगता है। इतने समय सोशल मीडिया से दूर रहना स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो सकता है। जीवनदायी गॉसिप का मसाला तो वहीं से मिलता है।

प्रश्न : आपके परिचय में पच्चीस से अधिक पुरस्कारों की सूची है। प्रथमदृष्टया ये मोहल्ले या कस्बा स्तर के पुरस्कार लगते हैं, इनमें कोई प्रतिष्ठित पुरस्कार नहीं लगता?

उत्तर : अब पुरस्कार-दाता अपना पुरस्कार प्रतिष्ठित नहीं करवाए तो इसमें हमारा क्या दोष! पुरस्कार प्रतिष्ठित करवाने में बहुत माल देना पड़ता है, विज्ञापन देने पड़ते हैं। रही बड़े पुरस्कारों की बात तो पद्मश्री के लिए मेरा नाम हर

साल जाता है, गृह मंत्रालय के पास हर साल सत्रह हजार से ज्यादा नाम आते हैं, वे भी क्या करें। वैसे मुझे पद्मश्री बूचड़लालजी की पुत्रवधू की स्मृति में स्थापित मान्यता पुरस्कार मिला है। इस अलंकरण में पद्मश्री तो लिखा है।

प्रश्न : सुना है आप कुछ संस्थाओं से जुड़े हैं, आपने भी कुछ पुरस्कार स्थापित किये हैं।

उत्तर : मैं अखिल विश्व हिन्दी फेडरेशन एवं 'ग्लोबल हिन्दी राइटर्स ऑनलाइन' का संस्थापक अध्यक्ष हूँ। इस सदी में साहित्य और साहित्यकारों का बड़ा अवमूल्यन हुआ है। जिस तेजी से साहित्यकारों की संख्या में इजाफा हुआ है, पुरस्कारों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई। एक श्रीफल, शाल और मानपत्र दे कर हम वंचित साहित्यकारों का सम्मान कर रहे हैं। जो मुझे पुरस्कार दिलवाते हैं, मैं उनको दिलवाता हूँ, परस्परोपग्रहो जीवानाम्, सभी जीव परस्पर सहायता कर खुश रहते हैं।

प्रश्न : आपने अपना नाम बहुत बड़ा रखा है। क्या आपको नहीं लगता कि बड़े नाम पढ़ने में पाठकों को असुविधा होती है?

उत्तर : जी नहीं, पाठकों को इसमें क्या असुविधा! नाम कौन पढ़ता है, सब नाम देखते भर हैं। आपने सुने होंगे ये नाम– सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', गजानन माधव मुक्तिबोध। बड़ा नाम सबको ध्यान रह जाता है। ज्ञान या प्रेम नाम बड़े 'कॉमन नेम' हैं।

प्रश्न : आपको कौनसे समकालीन साहित्यकार प्रिय हैं, आप उनको कितना पढ़ते हैं?

उत्तर : मैं कुछ साहित्यकारों का नाम लेकर शेष को मायूस करना नहीं चाहता। जो साहित्यकार भगवान को प्रिय रहे, वे मुझे भी प्रिय रहे। जो अभी प्रभु को प्रिय होना शेष हैं, मैंने उनको विचाराधीन रखा हुआ है। मैं भगवान से अलग हूँ क्या! जहाँ तक मेरे पढ़ने का सवाल है, अपना लिखा ही पढ़ने का समय नहीं है तो दूसरों का कब पढ़ूँ।

प्रश्नः तो व्यंग्य लेखन में आपका क्या स्थान है, और आगे क्या संभावनाएं हैं?

उत्तर : देखिए, हरिशंकरजी परसाई चप्पल पहनने के बाद पाँच फीट साढ़े सात इंच से कुछ ऊपर थे। शरदजी जोशी भी पाँच फीट साढ़े सात इंच से कुछ ऊपर लगते थे। अब पाँच फीट सात इंच से कुछ ऊपर की साइज में ढेर सारे व्यंग्यकार हैं। मैं भी पाँच फीट सात इंच तक तो पहुँच जाऊँगा। आजकल लंबाई बढ़ाने के लिए योगा कर रहा हूँ। लोग मुझे परसाईजी या जोशीजी के समकक्ष न मानें, समलंब तो मानना ही पड़ेगा।

प्रश्न : आप अपनी रचना पर कितनी मेहनत करते हैं, या सब स्वतः हो जाता है? दरअसल, आपकी रचना प्रक्रिया क्या है?

उत्तर : रचना नदी की तरह बहती आती है, तब मैं ख़ुद को सुनाने लगता हूँ। ख़ुद जोर से बोलो और सुनो तो सीधा दिल तक पहुँचता है। मैं अपना बड़बड़ाना रिकॉर्ड कर लेता हूँ। फिर अच्छा मुहूर्त देख कर टाइप करना शुरू करता हूँ। ब्लॉग पर पोस्ट करने के लिए टाइप करना जरूरी है। अक्षर ढूँढ–ढूँढ कर एक उँगली से टंकित करता हूँ। आजकल रचना प्रक्रिया कठिन और श्रम–साध्य हो गयी है। रचना पूरी होते ही मैं घरेलू संपादक के आगे–पीछे घूमना शुरू कर देता हूँ। वे समझ जाती हैं और आग्रहपूर्वक मेरी रचना संपादित कर देती हैं।

प्रश्न : जिन रचनाकारों को घरेलू संपादक सुलभ न हों, तो वे क्या करें?

उत्तर : सफल होने के लिए, साहित्यकार के पास अपना संपादक होना ही चाहिए। जिनके पास घरेलू संपादक न हों, उन्हें तदर्थ संपादक रख लेना चाहिए। हिन्दी साहित्य में 'वह' की भूमिका पर खूब लिखा गया है, उसे पढ़ना चाहिए।

मैंने अपना मोबाइल ऑफ कर दिया, और खड़ा हो कर उन्हें साक्षात्कार के लिए धन्यवाद दे रहा हूँ। वे धन्यवाद नहीं ले रहे, कह रहे हैं, अभी और इंटरव्यू लो।

सरकारी सौजन्य से हिंदी डे

पात्र– नलिनी : अधिकारी की बेटी
विमला : अधिकारी की पत्नी
कुंतल : हिंदी संस्था के संयोजक, कवि
रोहित : अधिकारी, हिंदी दिवस के आयोजक

[नेपथ्य में गीत बज रहा है– वर दे, वीणा वादिनि वर दे। प्रिय स्वतंत्र–रव अमृत–मंत्र नव भारत में भर दे–]

विमला : निराला जी का इतना सुंदर गीत और तुम्हारा ये कैसा उछल–कूद नृत्य। लोग हूट करेंगे, हूट।

नलिनी : हूट नहीं हिट होगा मम्मा। यह हिंदी डे के लिए सरस्वती वंदना है। ये क्लासिकल मिक्स हिप–हॉप डांस है। हिंदी हिप–हॉप हो तो एकदम समझ आती है।

रोहित : डार्लिंग इसे छोड़ो, ये इनका आधुनिक सोच है। अपना सोचो, मिनिस्टर आ रहे हैं, बड़े बॉस आ रहे हैं, मैं संचालन कर रहा हूँ। शो हाउसफुल चाहिए। इस बार तुम्हें छूट है, अपने पूरे किटी क्लब को इनवाइट कर लो प्लीज।

नलिनी : हूँ, इम्प्रेशन मारना है तो हिंदी प्रेम जाग गया। हे भगवान, भले हिंदी हिप–हॉप बन जाए पर हिंदी दिवस रोज–रोज मने। घर में थोड़ा हिंदी माहौल बने। मेरी किटी पार्टी को इज्जत मिले। (गुनगुनाने लगती है– हिंदी हैं हम वतन हैं, हिंदोस्तां हमारा–)

नलिनी : मम्मा प्लीज, गाना है तो साउंडप्रूफ बाथरूम में गाइए। एक तो गीत कठिन है, फिर डांस में इमोशन डालना है। ओएमजी ये हिंदी डे, हिंदी में क्यों होता है?

विमला : बेटा, तुम्हारे पापा यह गीत अंग्रेजी में समझा देंगे। फिर तुम जितना चाहो इमोशन डाल सकती हो। भाव समझोगी तो दर्शकों से भाव मिलेगा। पापा की इज्जत का सवाल है।

रोहित : विमला रहने दो, इस सबके लिए प्रोफेशनल कोरियोग्राफर है। ये कोई थोड़ा हटके, थोड़ा बचके वाला डांस नहीं है। इक्कीसवीं सदी की एरोबिक्स डांस स्टाइल है। युवा पीढ़ी को हिंदी से जोड़ने के लिए एरोबिक्स जरूरी है। हिंदी मीडिया आजकल कितना फालतू हो गया है। हम कुछ नया कर रहे हैं, हा..हा..हा।

विमला : भले टीवी चैनलों के कार्यक्रम घटिया हों, उनकी बहसें चिल्ला चोंट हों, वे उबाऊ चल रहे हों पर आप लोग सब जगह अंग्रेजी घुसाने लगे तो अधिकांश लोग टीवी चालू ही नहीं करेंगे, समझे। अच्छे कार्यक्रम मांगिए, अच्छे कार्यक्रम बनेंगे।

नलिनी : ओम् शांति-शांति। हमारी पीढ़ी की भी तो सुनिए। हम हिंदी फिल्में इंजॉय करते हैं, हिंदी गाने इंजॉय करते हैं। हिंदी लिटरेचर ऊपर से जाए तो ये टीचर्स को सोचना चाहिए। वे जिस जमाने की हिंदी पढ़ाते हैं, उनकी पढ़ाने की टेकनीक भी उतनी ही पुरानी है। रट्टू तोता बना कर वे हमें नहीं पढ़ा पाएँगे।

[डोर बेल बजने की आवाज, नलिनी आईपैड उठाकर पैर पटकते हुए जाने लगती है, विमला भी चली जाती है, रोहित द्वार खोलता है। कवि कुंतल का प्रवेश, नेपथ्य से वर दे वीणा वादिनि की मंद ध्वनि आ रही है।]

कुंतल : प्रणाम सर, वाह आपका घर कितना संस्कारमयी है। माँ शारदे का वरद हस्त है आप पर। मन गदगद हो गया सर।

रोहित : बच्चे रिहर्सल कर रहे हैं। आप प्रोग्रेस बताइए, हम प्रोग्राम भी डिस्कस कर लेते हैं। मिनिस्टर साहब के पीए बता रहे थे, सर का प्रोग्राम बहुत टाइट है। कुछ और संस्थायें भी हिंदी डे मना रही हैं। सब टॉप कवि अपने यहाँ ही आना चाहिए और हॉल एकदम पैक होना चाहिए।

कुंतल : क्या है न सर, शादियों के सीजन में बैंड–बाजे वालों के भाव बढ़ जाते हैं। पर हर दूल्हा अपनी बारात की सेटिंग कर लेता है। हें..हें..हें.. साहित्यकारों का इस दिन शाल–दुपट्टे और नकद–नारायण पर अधिकार बनता है सर। बेहतर बजट रखें और श्रेष्ठ परिणाम पाएँ। आप सीढ़ी से चढ़ जाएँ तो ऊपर पहुँच कर सीढ़ी खींच मत लेना। मन मिलाने में बहुत मेहनत लगती है सर।

रोहित : हीं...हीं...हीं...। सब समझदारों को इशारा कर दो, यह इलेक्शन इयर के पहले का हिंदी डे है। कार्यक्रम शानदार हो। सरकार साहित्यकारों का उद्धार चाहती है, हिंदी को वोट बैंक बनाना चाहती है।

कुंतल : सर जी, हास्य सम्राट और वीर रस कवि नरसिंह जी की छोटी सी शर्त है। वे मंत्रीवर को कविता समर्पित करके काव्य पाठ करेंगे और उनके पीछे–पीछे निकल जाएँगे। उन्हें अगले कार्यक्रम में भी समर्पण करना है।

रोहित : एडजेस्ट करेंगे, उनसे कवि सम्मेलन के दूसरे दौर की शुरूआत करा लेंगे, बस वे पहले दौर में लोग जुटा दें। मंत्री जी के आते ही सरस्वती वंदना डांस, सत्रह संस्थाओं द्वारा मंत्री जी को हार अर्पण, साहब द्वारा स्वागत भाषण, संपादक जी का की–नोट, फिर साहब मैडम की किताब का विमोचन, माननीय मंत्री जी का भाषण और मेरी तरफ से आभार। टाइम बहुत टाइट है।

कुंतल : इस सबमें मैं क्या जुलूस में ट्युब लाइट उठा कर चल रहा हूँ सर जी?

रोहित : सॉरी, सॉरी। अरे आपकी अहम् भूमिका है। आप मंत्रीवर का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं। (हँसते हुए) थोड़ा कम मक्खन लगाइएगा, बाद वालों के लिए भी कुछ गुंजाइश रहे।

कुंतल (लिखने का उपक्रम करते हुए)**:** मैंने नोट ले लिया है। आप भी लिख ही लीजिए। आजकल दिमाग का कोई भरोसा नहीं है। इस नाचीज सहित पाँच हिंदी सेवियों को मंत्रीजी पुरस्कृत करने वाले थे, वो क्या हुआ?

रोहित : हाँ, आप अपनी संस्था से हिंदी सेवा पुरस्कार के लिए बड़े साहब के, आपके और मेरे नाम की अनुशंसा भिजवा दीजिये। दो अति वरिष्ठ कवियों के नाम भी डाल दीजिए, ऐसा नहीं लगना चाहिए कि सम्मानों में बंदर

बाँट हो गई। योग्यता का भी सम्मान होना चाहिए।

कुंतल : कवियों के साथ हर जगह बड़ी नाइंसाफी हो रही है। हम संस्था ले कर बैठे हैं, उन्हें क्या जवाब देंगे। मैडम के विमोचन के समय सब कवियों का मंत्रीजी के साथ ग्रुप फोटो बनता है। हिंदी सेवियों का एक ही तो दिन है।

रोहित : कुंतल जी नाराज न हों। पैसा सरकार का, साहब दिलवा रहे, मंत्री जी दे रहे। उनका सम्मान भी तो हिंदी का सच्चा सम्मान हुआ। हुआ कि नहीं? हिंदी का समग्र विकास सोचिए, सबको जोड़िए।

(हाथ में चाय-नाश्ते से भरी ट्रे लिए विमला का प्रवेश)

विमला : चाय-नाश्ता लीजिए। वैसे एक बात बताइए, ये हिंदी दिवस का कार्यक्रम है या मंत्री दिवस का।

कुंतल : हें..हें..हें.... आपने भी क्या सिक्सर मारा है भाभीजी। कार्यक्रम तो हिंदी का ही है, बस सौजन्य मंत्री जी का है। सौजन्य से सब खुश रहते हैं। सरकार का सौजन्य न हो तो कालिदास पेड़ पर बैठे रह जाएँ।

(पर्दा गिरता है। नेपथ्य से गीत सुनाई देता है - कलुष भेद तम हर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे। वर दे, वीणा वादिनि वर दे-)

कबीरा खड़ा बजार में

क्या मालूम कबीरदास जी ने कौनसा बाजार देखा था। तब भिंडी बाजार या जवेरी बाजार नहीं थे। पर उन्होंने क्या खूब कहा– 'कबीरा खड़ा बजार में, सबकी माँगे खैर।' इन दिनों बाजार में सबकी बजती है, सबकी जेब कटती है। शुक्रिया कबीरजी आपने हम सबकी खैर की दुआ माँगी। हमने तो आप जैसी सोच वाले रचनाकारों को अब हाशिए में धकेल दिया है।

इस सदी में हर चीज बाजारीकरण के दौर में है, आदमी से लेकर उसका पाजामा तक। चीज छोटी हो या बड़ी, खरी हो या खोटी, बस पैकिंग जानदार हो, कवर शानदार हो। अब माल के पहले डिब्बे की चमक बोलती है। चुनाव परिणाम के पहले पार्टी का घोषणा–पत्र बोलता है। घोषणा–पत्र न बोले तो जमानत जब्त होने में क्या देर लगती है। राजनेता बाजार में आएँ उसके पहले उनका बखान शुरू हो जाता है। नारे लगते हैं– हमारा नेता कैसा हो, कोई नहीं कहता– 'चोर, उच्चकों जैसा हो।' जनता सच जानती है कि बहुत से राजनेता इन विशेषणों पर खरे उतरते हैं। बाजार और चीजों के साथ भी ऐसा ही है। नेता बाजार में है, चुनाव के बाजार में वोट बिक जाते हैं, पूंजी के बाजार में चीजों के बदले आदमी बिक जाता है।

जनता सोचती है 'वसुधैव कुटुंबकम्' मतलब सारी दुनिया अपना घर हो, कहीं आने–जाने के लिए पासपोर्ट, वीजा न लेना पड़े। परन्तु राजनीति सत्ता के बारे में सोचती है। वह जनता की लगाम कस कर पकड़ रखना चाहती है। उसने दुनिया का वैश्वीकरण नहीं किया, सिर्फ बाजार का वैश्वीकरण किया है– ग्लोबल मार्केट्स, केपिटल मार्केट्स। आम राजनेता, अमेरिकी राजनेता जैसे धूर्त, चीनी राजनेताओं जैसे चालबाज और उत्तरी कोरिया के राजनेताओं जैसे अगड़म–बगड़म

नहीं हुए तो फिर क्या राजनीति! ग्राम पंचायत के पंच या नगर पालिका के पार्षद का ही चुनाव जीतना हो तो पुतिन या ट्रंप को 'फॉलो' करना पड़ता है।

बाजारीकरण के दौर में पूंजी में बड़ी वृद्धि हुई है, पूंजीपति बढ़े हैं, दिलों को दौरे पड़ रहे हैं और दिल छोटे हो गए हैं। सारे बड़े नोट नए हो गए हैं, सारा गंदा धन पवित्र हो गया है। काला धन ऑफ-शोर जा-जा कर सफेद हो गया है। बाजारीकरण ने दिमाग का कबाड़ा कर दिया है। अब घड़ी का ख्याल आता है तो रोलेक्स दिखती है। टाइम तो वह भी वैसा ही बताती है जो पाँच सौ रुपये की घड़ी बताती है। और, घड़ी कुछ भी समय बताए, कहीं पहुँचने में एक-डेढ़ घंटा लेट हों तभी तो प्रतिष्ठा की बात है। टाइम देखना इसलिए जरूरी नहीं है कि समय से पहुँचना है। टाइम देखना इसलिए जरूरी है कि लेट पहुँचना है, प्रतिष्ठा से पहुँचना है। अपना महत्त्व भले ही खोखला है, उसे डमरू बजा-बजा कर बताना जरूरी है।

मर्सिडीज या जेगवार कार का सपना देखना अलग बात है। लेकिन आम बाजारियों ने अपना नाम जनमानस के दिमाग में इस कदर ठूँस दिया है कि आटा फलाँ ब्रांड का चाहिए तथा दाल फलाँ ब्रांड की। कपड़ों का ब्रांड तय, और जूतों का भी। दाँत चमकाने के लिए दन्त-कांति चाहिए और बाल चमकाने के लिए केश-चंगा। हमारी जरूरतों और आदतों पर पिशाचों का साया पड़ गया है। तीन साल के बच्चे को अब झुनझुना नहीं, आई-पैड थमाना पड़ता है। बच्चों को यदि माँ-बाप पसंद करने की सुविधा मिले तो अस्सी प्रतिशत माँ-बाप रिजेक्ट हो जाएँ।

बाजारवाद में मॉल अब लालसा केंद्र बन गए हैं। जय हो क्रेडिट कार्ड की। उधारवाद बहुत उदार हो गया है। जो मर्जी आए खरीद लो। नहीं चाहिए तो भी खरीद लो, बाद में 'सेल' में मिले न मिले। आज नहीं खरीदा तो यह जन्म अकारथ चला जाएगा। कल किसने देखा, आज में जियो और ठप्पे से उधार लेकर जियो। कल आम चुनाव आएँगे, तो झाँसा पार्टी जरूर वादा करेगी कि उनकी सरकार बनी तो वे सब कर्जे माफ कर देंगे। क्रेडिट कार्ड के कर्जे भी माफ हो जाएँगे। लोकतंत्र में राजनेता मनभावन वादे कर सकते हैं। यह राजनीति का अपराधीकरण है या अपराधियों का राजतिलक!

मॉल में टोपी पहना कर बेचने की कला आनी चाहिए। बाजार मतलब मुनाफा कमाने की जगह। बड़ा बाजार यानि बड़ा मुनाफा, और मॉल मतलब

मालामाल। छोटे कारोबारियों को मॉल–संस्कृति कच्चा चबा गई है। शुरू–शुरू में जनता खुश हुई थी कि चीजें सस्ती मिलेगी। चीजों का रंग–रूप बदल गया, कीमतें बहुत बढ़ गईं, पर डिस्काउंट का टैग लग गया। उल्टे बाँस बरेली को। दिमाग शातिर होने के बावजूद डिस्काउंट को बचत समझने लगा है। रहस्यमयी दुकानदार ज़्यादा मुनाफा कमाने लगे हैं। वाह रे चालक बाजार, कैसा धूर्त कर्म, चित भी तेरा पट भी तेरा।

हर मॉल में खाने–पीने के लिए फूड कोर्ट होते हैं। वे फास्ट फूड और स्लो फूड बेचते हैं। फास्ट फूड जल्दी बनता है, और धीरे–धीरे आदमी को फैलाता है। घर से टिफिन ले कर आने वालों को यहाँ अपना डिब्बा खोलने में शर्म आती है। यहाँ घर का खाना खाकर गँवार कहलाना है क्या! माँ–बहनों को यहाँ पीज़ा और नूडल्स खाना, छप्पन भोग जैसा लगता है। दुनिया की आधी आबादी भूखों मरती हैं, पर फूड कोर्ट में खाना खाने वाले कई लोग आधा खाना कचरे में डालते हैं। वे इसे कहते हैं दरियादिली। यह भोग–विलास, विकास है या सामूहिक विनाश की और बढ़ते शुरूआती कदम! यदि हमने सामाजिक अर्थशास्त्र बनाया होता तो हम इसे कहते उपभोक्ता पागलपन।

ऑन–लाइन शॉपिंग ने महाआलसी लोगों को भी जेबें खाली करने पर मजबूर कर दिया है। उँगली घुमाई कि आधुनिक जिन्न हाजिर। 'मेरे आका, एक चीज खरीदिए, दो मुफ्त में लीजिए। बस आप क्रेडिट कार्ड का नंबर तैयार रखिए, दुनिया आपके कदमों में।' बेचारे पुरुष इसी बात में खुश है कि शॉपिंग बैग ढोने के अवांछित काम से मुक्ति मिली। जेब तब भी ढीली होती थी, पर उसमें गरिमा नहीं थी।

आज सुबह से पाँच वर्षीय नाती जिद कर रहा है, उसे लॉलीपॉप चाहिए। मैंने उस पर दशकों पुरानी तकनीक आजमाई, कहा– 'दुकान पर लॉलीपॉप खत्म हो गए।' उसने अपने आई–पैड पर गूगल खोला, लॉलीपॉप लिखा और परिणाम सामने कर दिए। बोला, नाना यहाँ आर्डर कर दो, पापा यहीं से सामान बुलाते हैं। मेरे पाँवों–तले की जमीन खिसकती लगी। अच्छा है, बैंक वालों को किसी ने यह कु–कारोबारी प्रस्ताव नहीं दिया कि माँ–बाप की जमानत पर बच्चों को क्रेडिट कार्ड पकड़ा दो, अन्यथा बच्चे तो इतने होशियार हो गए हैं। एक जमाना था,

बाजार, बाजार में हुआ करता था। अब तो बाजार उँगली की नोक पर है, किचन में है, बेडरूम में है और लिविंग रूम में है। मोबाइल पर चौबीसों घंटे खुला है, बाजार से कहाँ बचोगे। सिर्फ एक चीज खरीदने पर कितना कुछ मुफ्त है यहाँ। न आपको कुरियर का खर्च देना है, न पैकिंग का।

फिजूलख़र्ची का आलम यह है कि हम हमारे दिमाग का रिमोट, सेल्समेन के हाथ थमा देते हैं। वह हमारी पसंद की प्रशंसा करता है, और हम बाग-बाग हो जाते हैं। मन ही मन कह उठते हैं दिल चीज क्या है आप जान लीजिए, और हमारा क्रेडिट कार्ड स्वत: अवतरित हो जाता है। इन दिनों, चीज की उपयोगिता के बारे में सोचना कंजूसी है। चीज में सोशल स्टेटस बढ़ाने का दम होना चाहिए बस। नए से नया मॉडल हमारे साथ सेल्फी में फेसबुक पर हो, लोग जिज्ञासा से देखें और तारीफ करें। हम तारीफ के बहुत भूखे हैं। सामान कुछ दिनों में पुराना, उबाऊ और कॉमन हो जाएगा, पर हमें मॉर्डन बने रहना है। चीजों का क्या है, हम और नई ख़रीद लेंगे, पुरानी फेंक देंगे। हमें क्या फर्क पड़ता है, नया खरीदो, पुराना फेंकों। हमें तो 'लैंड फिल' करते हुए जमीन को कचरे से पाट देना है। आज में जीना है तो जमीन खोदिए, अनाज उगाइए, खनिज निकालिए, जहर फैलाइए और चैन से जी लीजिए अपनी जिंदगी। कल, जो कुछ हजारों साल बाद आएगा, अपनी पीढ़ियाँ जमीन खोदेगी तो उन्हें मिलेगी 'लैंड-फिल' से पाटी गई धरती; धुंध-धुएँ और ग्लोबल वार्मिंग से धधक रही धरती। आज से कुछ हजारों साल पहले जन्मे लोग गँवार, कंजूस और अंगूठा छाप थे जो हमारे लिए इतनी सुन्दर धरती छोड़ गए। अब अगर ये धरती खत्म हो जाये तो क्या है? हम तो अब तक के सबसे बुद्धिमान, धनी और टेकी (तकनीकी) लोग हैं, धरती को उजाड़ कर चाँद और मंगल ग्रह पर बसने की सोच रहे हैं।

कैसा चुनाव है यह

आज व्यंग्य लिखते हुए मैं बहुत आहत हूँ, राजनेताओं के घिसे-पिटे भाषणों को सुन-सुन कर निराश हूँ। उनके पास खुद के योगदान के बारे में बताने के लिए कुछ ज़्यादा नहीं है। बस वे भड़काऊ भाषणों से अपने विपक्षियों को नंगा करने में जुटे हैं। मैं आम आदमी हूँ, मुझे लगता था इस प्रजातंत्र में मैं बार-बार ठगा गया हूँ, पर इस बार वाकई लूट लिया गया हूँ। राजनीतिक दलों ने मैदान में जो उम्मीदवार उतारे हैं उनमें से अधिकांश नैतिक रूप से अयोग्य और प्रजातंत्र के प्रति अनिष्ठावान लोग हैं। वे धनतंत्र के सहारे चुनाव लड़ रहे हैं और देश को अपने जेब में भर लेने के लिए येन-केन चुनाव जीतना चाहते हैं। मुझे लगता है यह चुनाव प्रजातंत्र के नाम पर अब तक का सबसे बड़ा धोखा है। यह कैसा चुनाव है, यहाँ तो महाठगों का ऐसा बाजार है जो गिरोहबद्ध है, कुसंगठित है। राजनीति की सब्जीमंडी में सारे टमाटर लिचपिचे और सड़े हैं, मिष्ठान बेचने वालों ने सारी बासी मिठाइयाँ भिनभिनाती मक्खियों के बीच सजा रखी हैं। राजनीति के कपड़ा बाजार में जो दुकानदार आए हैं वे चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं हम चिथड़े दे सकते हैं, सड़े-गले, फटे-पुराने कपड़े दे सकते हैं, मुफ्त में दे सकते हैं, लेना हो तो लो, नहीं तो नंगे रहो, ओ प्रजातंत्र के नागरिकों तुम्हारी यही नियति है।

तर्कसंगत और दीर्घकालीन व्यवस्था बनाने और विकास का रोडमैप ठंडे बस्ते में बंद कर अब राजनेता चौराहे पर खड़े हैं। एक चिल्ला रहा है हम पाँच साल में साढ़े तीन लाख रुपये मुफ्त में देंगे, दूसरा बोल रहा है हम तुम्हें मुफ्त में मकान दे देंगे। रोजगार, व्यावसायिक शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली-पानी, भ्रष्टाचार रहित प्रशासन सब हाशिए पर है। लोग केवल अपने वोट का ही सौदा नहीं कर

रहे, वे अपना ईमान, अपनी आजादी, अपना देश सत्तालोलुपों को बेच रहे हैं। खरीददार सरेआम कह रहे हैं हम तुम्हें रोजगार नहीं दे सकते, हम सरकारी ख़जाने से भीख दे सकते हैं, लेना है क्या! तुम्हारे प्रजातंत्र में यही संभव है।

महामहिम धृतराष्ट्र के लिए न्याय का साथ देना बहुत आसान होना चाहिए था, पर वे न्यायप्रिय होते तो अपने पुत्र को गद्दी पर कैसे बिठा सकते थे। श्रीमती धृतराष्ट्र की भी यही समस्या थी, वे सत्य देख सकती थीं पर वे देखना नहीं चाहती थीं। उन्होंने आँखों पर पट्टी बाँध कर सारे देखे को अनदेखा कर दिया। न्यायपालिका जानती है कि चुनाव में कौन क्या है, कौन कैसे, कहाँ से ला कर करोड़ों रुपए बाँट रहा है। चुनाव आयोग को कहना चाहिए था कि कुछ तो शर्म करो महिलाओं के अंडरवियर का रंग देखने वालों, देश के वीर शहीदों को शाप देने वालों, कश्मीर को भारत के नक्शे से मिटा देने वालों, केंद्रीय सत्ता को राज्य की संकीर्ण पुलिस के हवाले कर देने वालों और ऐसे अभिशापित राजनेताओं का अंधसमर्थन करने वालों। ये जो स्वयंसिद्ध बातें हैं उनके लिए दंड देने वाले क्यों ख़ुद को अपाहिज समझ रहे हैं! चुनाव आयोग और न्यायपालिका को इतना दृढ़ और निष्पक्ष होना चाहिए था कि आज कीचड़ सने जितने राजनेता मैदान में हैं वे सलाखों के पीछे होते। जिन लोगों ने जरा-सी सम्पत्ति से राजनीति शुरू कर पाँच हजार करोड़ की दौलत इकठ्ठा कर ली, वे इस प्रजातंत्र के आदरणीय हो गए! धिक्कार है देश की नियामक संस्थाओं को। धिक्कार है ऐसी राजनीति को जिसने जनतंत्र की इतनी शक्तिशाली संस्थाओं को अपना पिठ्ठू बना लिया।

संविधान की दुहाई दे कर कुछ राजनेता जोर-जोर से दरवाजा ठकठकाए जा रहे हैं। कह रहे हैं उठो, संविधान खतरे में हैं, जल्दी से उठो और भागो, जिधर भाग सकते हो भागो। दक्षिण में मत जाना उधर दक्षिणपंथी तलवारें खुली हैं, उत्तर में मत जाना उधर दलितपंथी हैं, पूरब में मत जाना उधर घुसपैठपंथी हैं, पश्चिम में मत जाना उधर हवा ख़राब है, आकाश में मत जाना उधर रामपंथी हैं, पाताल में मत जाना उधर रावणपंथी है। आम नागरिक पशोपेश में है कि वह किधर जाए। समझदार कह रहे हैं जिधर भी जाना हो बीच में जाओ, किसी को पता नहीं चले कि तुम किधर जा रहे हो, सब तरफ सीसीटीवी कैमरे लगे हैं, नेतागण धमका रहे हैं कि उन्हें मालूम पड़ जाएगा तुमने किधर वोट दिया। उन्हें वोट नहीं दिया तो वे

तुम्हारा काम नहीं करेंगे, जो उन्हें वोट देगा सिर्फ उसका काम करेंगे। भले आज तक उन्होंने किसी का जायज काम, जायज तरीके से नहीं किया। बड़ा संकट काल है यह, अभूतपूर्व युद्ध है यह। पहले धर्मयुद्ध हुए, एक तरफ पांडव होते थे दूसरी तरफ कौरव। यह चुनावयुद्ध है जिसमें एक तरफ कौरव है और दूसरी तरफ भी कौरव।

कैसी घालमेल है कि वे जन्मजात उच्च पवित्र दल में रहे वे अब निम्न पवित्र दल में घुस गए हैं, उनकी पत्नी दलित पवित्रों के दल में जा बैठी है। पति-पत्नी दोनों कितनी चालाकी से जनता को बेवकूफ बना रहे हैं। राजनीति कुछ लोगों का खानदानी धंधा बन गई है। उनका यह छद्म सेवाभावी चाल-चलन कब तक जनता को समझ में नहीं आएगा!

देश और संविधान के प्रति राजनेता की निष्ठा दोयम हो गई है। कुछ राजनेता कह रहे हैं कि संवैधानिक ढाँचे में उन्हें केंद्र की सत्ता ही मंजूर नहीं है। केंद्रीय एजेंसियाँ उनके राज्य में आकर क़ानूनन काम नहीं कर सकतीं, उन्हें अपने घोटालेबाज साथियों और जनता का पैसा हजम कर जाने वालों को बचाने की ज्यादा चिंता है। अपने क्षणिक लाभ के लिए राजनेताओं ने देश को दलित, निम्न, उच्च आदि वर्गों में बाँट रखा है। उन्होंने कौम आधारित कानून बनाए और धर्म के नाम पर देश को बार-बार सुलगाते रहे। वे आज वोट मांग कर सत्ता में जायज होना चाहते हैं!

कैसा जनतंत्र है जहाँ बैठे लठैतों और लुटेरों के सामने सदाचारी गिड़गिड़ा रहे हैं। अधिकांश जगहों पर मक्कारों, सौदागरों, बाहुबलियों, गुंडों और ऐसे ही कथित भारतरत्नों में से खोटे रत्नों को चुनना है। क्या ऐसा चुनाव जनता के साथ धोखा नहीं है, राजनीतिक दलों के पास अपनी जनता को देने के लिए क्या साफ-सुथरे लोग नहीं हैं! महान प्रजातंत्र होने का दंभ भरने वाला देश धनतंत्र के कोठे पर खड़ा है और कुटिल राजनीति मुस्कुरा रही है। क्या हम मतदाता अपने वोट से नापाक राजनेताओं को सबक सिखा सकते हैं! अभी समय है, हमारी सतर्कता राजनीति में स्वच्छता लाने की शुरुआत होगी।

मीडिया करवेज के चलते

हमारे एमेले (एमएलए) ग्रामीण क्षेत्र के हैं। वे हैं घाघ, पर उन्हें कोई घास नहीं डालता, उनके साथ कोई फोटो नहीं खिंचवाता। शहर के एमेले तिकड़मी हैं, उनका नाम अख़बारों में रोज काला होता है, मंत्रीवरों के साथ फोटो छपते हैं। एक दिन जब हमारे ग्रामीण एमेले के दु:ख का घड़ा भर गया तो वह मुझसे बोले लेखकजी, अपने गाँव में कोई कार्यक्रम रखें, किसी मंत्री को बुलाएँ। कुछ अपना, कुछ गाँव का नाम रोशन करें। मैंने कहा दो महीने बाद अपने यहाँ गधों का मेला भरने वाला है, उसका उद्‌घाटन मंत्रीजी से करवालें तो कैसा रहे। आज तक गधों के मेले का उद्‌घाटन गधे ने नहीं किया। एकदम ओरिजिनल आइडिया था, सो चल निकला।

हमारा प्रतिनिधि मंडल सबसे पहले संस्कृति मंत्री के घर पहुँचा। हमने उनसे मुख्य अतिथि बनने का अनुरोध किया तो वे सकपका गए बोले, गधे का संस्कृति से क्या लेना देना, जबकि वे जानते थे कि संस्कृति गधों की वजह से ही टिकी है। मैंने कहा सर, ये विशेषण वाले गधे नहीं हैं, ये रियल वाले गधे हैं, इनसे संस्कृति को कोई खतरा नहीं है। उन्हें कभी कोई पुरस्कार नहीं मिला है तो पुरस्कार वापसी का शर्मनाक टंटा होगा ही नहीं। संस्कृति मंत्रालय उनका मान-सम्मान करेगा तो मानवीय गधों की चेतना जागृत होगी सर, जानवर आपका मान-सम्मान करेंगे तो बुद्धिजीवी उनका अनुकरण करेंगे सर। खेद, वे हमारे धर्मनिरपेक्ष सोच को नहीं समझ पाए।

हम पशुधन मंत्री के घर पहुँचे। घर के पीछे विशाल तबेला था, जर्सी गायें थीं, बफेलो की मुर्रा भैंसें थीं, कैनेडियन गूस थे पर गधे नहीं थे। प्रेसिडेंट ट्रंप

अपनी ही कैबिनेट के नामांकन पूरे नहीं कर पा रहे थे तो विदेशी गधे भारत तक कैसे आ पाते। गधों के मेले में आने का आमंत्रण उन्हें घर वापसी जैसा लगा। बोले गणतंत्र दिवस की परेड में गधों की झाँकी निकालने में पशुधन मंत्रालय बहुत बिजी है, इस बार माफ करें। एमेले जी हमें तीसरी जगह ले गए, वे राज्यमंत्री थे, बिना विभाग के। वे गाड़ी की स्टेपनी की तरह कहीं भी फिट हो सकते थे, वे भी लटके-झटके बताने लगे, उनकी ना-ना और नो-नो बंद ही नहीं हो रही थी। हमें बैरंग उठता देख उनका दबा वीआईपी मन फटाक से बाहर निकल आया। वे गंभीरता से कहने लगे गधों का इतना बड़ा मंच है तो आना ही पड़ेगा, उनके लिए एडजेस्ट करेंगे। इस तरह, वे उद्घाटन करने के लिए तैयार हो गए। सरकार ने पहली बार रियल गधों को इज़्जत बख़्शी।

जनपद में उत्सव की तैयारी होने लगी। बच्चों में मस्ती थी, जवान हिलोरे ले रहे थे। सड़कों पर फिर से छिड़काव हो गया था। जीएसटी वालों के सौजन्य से दुकानदारों ने स्वागत द्वार बनवा दिए थे। गधे इसी मार्ग से मेला प्रागंण में पहुँच रहे थे। उद्घाटन दिवस का प्रातःकाल हुआ, लोक निर्माण विभाग के सारे मजदूरों को मैदान में बैठे रह कर तालियाँ बजाने का काम मिल गया। अध्यापकों ने मंच के पास बच्चों की थप्पियाँ जमा दीं और उन्हें नारे रटवाने लगे। बालिकाएँ जन-गण-मन की रिहर्सल कर रही थीं, ट्रक, ट्रैक्टर और बस वाले मन मारकर दूर-दराज से श्रोताओं को भर-भर कर ला रहे थे। लाउडस्पीकर वाले हलो, हलो माइक टेस्टिंग कर 'पल्लो लटके' की सीडी चला रहे थे। प्रजातंत्र में पहली बार वास्तविक गधों को मान्यता मिली थी। गधे हिनहिना रहे थे, गाँव की शक्ल राजधानी जैसी हो गई थी। सब आमंत्रित, अनामंत्रित लोग आ चुके थे, बस वीआईपी के आने की देर थी।

मंत्रीजी को हार-फूल चढ़ाने वाले भविष्य के कृपाकांक्षियों की मैं सूची बना रहा था। चंदे के हिसाब से किसी का नाम ऊपर कर रहा था, किसी का नाम नीचे डाल रहा था। फोटोग्राफर को ख़ास-ख़ास भक्तों की भोली सूरतें बता दी थीं। वीआईपी राज्यमंत्री को हमने महामहिम मंत्री के पदनाम से संबोधित करना तय किया था। यही एक सम्मान था जो उनकी आत्मा, अंतर्आत्मा और परमात्मा तीनों को प्रसन्न कर सकता था। उनके सम्मान में कई संस्थाओं का रातोंरात प्रसव हो

गया था। सबके दो-दो शब्द तैयार थे। गधों ने एमेलेजी में विश्वास भर दिया था कि इस आयोजन से विधानसभा क्षेत्र में उनकी तूती बोलकर रहेगी। छोटे कुत्ते भौंकना बंद कर देंगे और बड़े कुत्ते काटना कम कर देंगे। मंत्रीजी का आशीर्वाद पाने विरोधी धड़े वाले दौड़-दौड़ कर काम कर रहे थे। वे वधू पक्ष वालों की तरह सत्ता-पुत्र के आने का इंतजार कर रहे थे।

एमेलेजी की जीप आते दिखी, उन्हें देख कार्यकर्ता जहाँ थे वहीं से वंदन करने लगे। साथ आए कलेक्टर और एसपी गधों को संभालने में लग गए। एमेलेजी से मालूम हुआ कि टीवी चैनलों पर गधों के मेले पर सम्मोहक चर्चा चल रही है। मेले ने व्यापक मीडिया कवरेज दिया है। उन्हीं से मालूम हुआ कि आज तीनों मंत्रीगण गधों के इस समागम में पधार रहे हैं। ऐसे मीडिया कवरेज के चलते हम प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री को बुलाते तो वे भी आ जाते, अब अगले साल सही। राजनेताओं को भारी-भरकम पब्लिसिटी मिले तो क्या गधे, क्या घोड़े।

घोषणा होने लगी, जनपद के शानदार निवासियों, माताओं और बहनों, हमारे अनुरोध पर तीन-तीन मंत्री इकट्ठे आ रहे हैं। जो लोग गधों को देखने नहीं आ रहे थे वे भी घर से दौड़े-दौड़े आने लगे, जय-जयकार करने लगे। सड़कों की धूल धन्य होकर गुलाल हो गई। एमेलेजी हमें एक और ले जाकर मंत्रणा करने लगे, उन्होंने गंभीर होकर पूछा अब क्या करें। हार-फूल तो इधर-उधर करके काम चला लेंगे। मैं अध्यक्षता करने वाला था अब आभार प्रकट कर दूँगा, सांसद जी से अध्यक्षता करा लेंगे। पशुधन मंत्रीजी को मुख्य अतिथि बनाना होगा। संस्कृति मंत्रीजी को मुख्य वक्ता बना देंगे पर राज्यमंत्रीजी का कुछ ठीक करो। राज्यमंत्रीजी को ठिकाने लगाने की जिम्मेदारी मुझ पर आ गई। मैं सोचने लगा, कभी ठस बुद्धि से कभी सरकारी बुद्धि से। सरकार इतनी तेजी से पद घड़ती है जैसे देश में बच्चे पैदा होते हैं। एक मुख्य संचालक, फिर अतिरिक्त मुख्य संचालक, उसके पाँच-छः उपमुख्य संचालक, उनके सौ-सवा सौ सहायक मुख्य संचालक। संचालक तो गधों जैसे जगह-जगह हो जाते हैं।

कारों का काफिला आया, हमने मंत्रीवरों को हार पहनाये, उन्होंने वे हार गधों को अर्पित किए और उत्सवधर्मी बन कर गधों के साथ फोटो खिंचवाये। बिना जनसेवा के जनसेवक कहलाने के लालायित लोग गला फाड़-फाड़ कर

जय–जयकार कर रहे थे। मर्यादा पुरुषोत्तम वरिष्ठ मंत्रियों के गुणगान के बाद मैंने राज्यमंत्रीजी को आमंत्रित किया। मैंने कहा वे आज के विशेष अतिथि हैं, वे बीज वक्तव्य देंगे। उनकी स्पीच मैंने लिखी थी। वे बोले हमारे देश में गधे ही काम करते हैं, गधों में बेरोजगारी भी नहीं है। हमारी सरकार सहिष्णु है, हम बुजुर्ग गधों को पेंशन देंगे और गरीब गधों के लिए न्यूनतम मासिक आय सुनिश्चित करेंगे। मेले में गधे बहुत बिके और ऊँचे भावों पर बिके। जनता बहुत ख़ुश हुई।

छपते-छपते – मुख्यमंत्रीजी ने अभी घोषित किया है कि हमारे एमेलेजी को तत्काल प्रभाव से बिना विभाग का संसदीय सचिव नियुक्त किया गया है और मैं उनका विशेष अधिकारी बनाया गया हूँ, जय हो।

स्पीड डेटिंगः नो नमूने प्लीज!

ऐसा कम होता है कि रात में व्यंग्य लिखने का विषय मिले तो खर्राटे बंद हो जाएँ। खर्राटे भरना लिखने से ज़्यादा जरूरी है। पर आज नींद नहीं आ रही थी। पास के कमरे से युवतियों की किलकारियाँ आ रही थीं। युवतियाँ ऐसे ही बातें करती हैं, बातें कम, हँसी ज़्यादा। इस वीकऐंड में न्यूजर्सी का यह होटल और आसपास के होटल भारतीय परिवारों से लदे-पड़े थे। अमेरिकी भारतीयों का सम्मलेन चालू होने वाला था। लोग फीस वसूलने के चक्कर में सामान्य से डबल खा गए थे। वे भारी पेट हो कर गहरी नींद का लुत्फ उठा रहे थे, बस मैं ही जाग रहा था।

यहाँ हर उम्र वर्ग के अपने समूह और अपनी मस्तियाँ होती हैं। मैं आयोजकों का हिस्सा था। ऑडियो-वीडियो उपकरण टेस्ट कर लिए थे ताकि वे ऐन वक्त पर फुस्स न हो जाएँ। यहाँ सब सभ्य श्रोता थे, प्याज-टमाटर नहीं लाते थे। वे मानव बम बन कर विस्फोट नहीं करेंगे ऐसा विश्वास था, तो काम-चलाऊ सिक्युरिटी रखी थी। बस श्रोताओं को भारतीय गालियों के साथ अंग्रेजी गालियाँ भी आती थीं, और वे इनके लेन-देन में बड़े उस्ताद थे। अंग्रेजों को हिंदी-पंजाबी गालियाँ देने का आनंद आप क्या जानें, अपनी गालियाँ आप समझो और ख़ुद हँसे जाओ! आपको हँसते देख अंग्रेज भी हँसने लगेंगे। मामला समझे बिना हँसने में आदमी माहिर है।

पास के कमरे से आती बातों में मीटू जैसा कुछ नहीं था। ये पड़ोसनें 'युवा-मिलन' कार्यक्रम से लौटी थीं। मुझे तो अपने बच्चों ने ही समझाया था कि स्पीड डेटिंग कितनी तेज होती है। अच्छा हुआ हमारे जमाने में स्पीड डेटिंग नहीं

थी, वरना हम कुँवारे रह गये होते। अपने जमाने में टिंडर ऐप की जगह पंडित ऐप हुआ करते थे, पंडित जी हमारे पीएम की तरह सदा सद्‌भावना यात्रा पर रहते थे। वे बहुपक्षीय रिश्ते जोड़ने में जादूगर थे। उन दिनों करोलबाग रिश्तों ही रिश्तों से आबाद रहता था। कुआँरा आदमी करोलबाग में घुसे तो गले में पट्टा बंधवा कर ही आता था। उन दिनों भले स्पीड नहीं थी, डेटिंग नहीं थी पर रिश्ते टिकाऊ थे। अनायास बच्चे हो जाते थे तो संबंध सीमेंट से जुड़ जाते थे। अब स्पीड डेटिंग का जमाना है। स्पीड इतनी फास्ट है कि लोग नाम की बजाय कोड नंबर बोलते हैं। युवतियाँ, नापसंद युवकों को चंपू कहती हैं और पसंद युवकों को बेबी कह रही हैं। युवक बड़े कन्फ्यूज हैं, वे फालतू बनें या पालतू।

स्पीड डेटिंग में मार्के की बात सामने आई। पढ़े-लिखे युवक दोस्ती बढ़ाने में ढीले होते हैं, वे अन्य युवकों से भी मेलजोल बढ़ाने में झेंपते हैं। उनको परिचित कराना हो तो आइसब्रेकिंग सेशन करना पड़ता है। बर्फ टूटती है फिर पिघलती है तब लड़के हाँ-हूँ करने लगते हैं। जबकि युवतियाँ, अन्य अपरिचित युवतियों से भी ऐसे मिलती हैं जैसे कक्षा पहली से वे एक ही टेबल पर साथ बैठ रही हों। लड़कियाँ युवा-मिलन की समीक्षा करते हुए खिलखिला रही थीं। उनके अनुसार लड़कों का कोई स्टैंडर्ड नहीं था। टिंडर पर एक से एक गधे भरे थे, वे सब यहाँ थे। सब मम्मा बॉय थे। मम्मियाँ यहाँ नहीं थीं तो वे बिना चाभी के खिलौने जैसे खड़े थे।

एक युवती कल की क्रूज के लिए रजिस्ट्रेशन करा आई तो सहेली ने पूछा, वाह अकेले-अकेले क्रूज पर! क्यों, लहरें गिनने का ठेका मिला है क्या? सहेली बोली- स्पीड डेटिंग में मजा नहीं आ रहा। लगता है, लड़कों में जेनेटिक गड़बड़ है। आज जो चश्मेबद्दुर मिले वो मोबाइल चिपकू मिले। एक तो हाथ मुझसे मिला रहा था पर नजरें मोबाइल पर टिकी थीं। मैंने उससे वहीं कह दिया, भाई साहब आप आईफोन से ही डेट करो। दूसरी सहेली बोली- मुझे आईफोनिया तो नहीं मिला, पर फेसबुकिया मिला था। मैंने नाम बताया तो उसने वॉइस कमांड से मेरी प्रोफाइल ढूँढ ली और कहने लगा मैं आपको बुकमार्क कर लेता हूँ। मैंने पूछा, आपको बुकमार्क करने के अलावा और क्या आता है? वह बेचारा इस कठिन प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाया।

लड़कियाँ स्पीड डेटिंग से निराश थीं। पहली कहने लगी मैं तो फीडबेक में लिखने वाली हूँ, नो नमूने प्लीज! फर्स्ट टाइमर्स के लिए कोई एटिकेट कोर्स रखना चाहिए, स्पीड डेटिंग में कुछ तो सेंस हो। लड़के हमसे इस तरह मिल रहे थे जैसे वे फ्री में डाउनलोड होने वाले मोबाइल के ऐप खोज रहे हों। दूसरी सहेली उसे सांत्वना देने लगी– कल फिर से ट्राय करेंगे, दिल छोटा न कर। वे कल की योजनाएँ बना रही थीं और मैं एटिकेट कोर्स लिखने लगा था।

हाइवे इज माय वे

मैं हाइवे पर कभी कार चलाता नहीं, दौड़ाता हूँ। सरकार कहती है सौ किलोमीटर की स्पीड पर चलो मैं एक सौ बीस पर दौड़ता हूँ। सरकार की अपेक्षा से अधिक तेजी से काम करता हूँ। क्या करूँ, सारा ट्राफिक निर्धारित गति से तेज दौड़ता है। जमाने के साथ नहीं चलो तो लल्लू बन जाओ। सड़क पर हर कोई हीरो बनना चाहता है। मेरे आगे धीमी गति से कोई कार जा रही हो तो दिल करता है, फिल्मी स्टाइल में अपनी कार उछाल दूँ और उस कार के आगे टपक जाऊँ। मैं ऐसा करने को तैयार होता ही हूँ कि बीमा कम्पनी का ख्याल आ जाता है। छोटी-सी बात के लिए वे कितनी ज्यादा प्रीमियम लेते हैं। उन्हें सोचना चाहिए जो लोग धीरे-धीरे सम्हल कर चल रहे होते हैं वे ही ठुकते हैं, जो लोग कानूनी स्पीड से ऊपर दौड़ते हैं, भला उन्हें कौन छू सकता है।

मैं पुलिस से डरता हूँ, डरना भी चाहिए। सरकार उनको तनख्वाह इसी बात की देती है कि ऐ पुलिस वालों तुम लोगों को चमका कर रखो। वे जब भी पौं-पौं कर या बत्तियाँ मिचकाते हुए पीछे पड़ते हैं तो मैं स्लो लेन में घुस कर अनुशासित हो जाता हूँ। विरोधी अपने से ताकतवर हो तो उसके लिए रास्ता छोड़ देने में ही भलाई है। पुलिस पर इससे बड़ा प्रभाव पड़ता है। वे समझ जाते हैं कि ड्रायवर ने गाड़ी चलाने के नियम पढ़े हैं। वे बिना बाय-बाय किए आगे निकल जाते हैं। सड़क पर चल रही पुलिस की एक कार सैकड़ों गाड़ियों की चाल एक झटके में सामान्य कर देती है। लोग पुलिस कार के समानांतर चलते हैं। कारें ऐसे चलती हैं मानो किसी को कहीं पहुँचने की जल्दी नहीं है। पुलिस को लगता है उनके इलाके में सारे ड्रायवर अनुशासन प्रिय हैं, वे फालतू में ऐसे शालीन लोगों पर संदेह करते हैं। उन्हें अपने सोच पर शर्म आती है, वे खुद ही अगली एग्जिट ले हाइवे से बाहर हो जाते हैं। उनके जाते ही हाइवे फिर 'रियल हाइवे' हो जाता है।

मुझे कार ढोने वाले टो ट्रकों पर बड़ा गुस्सा आता है। वे जगह-जगह अपने ट्रक खड़े कर दुआयें माँग रहे होते हैं कि बस वहाँ कोई एक्सीडेंट हो जाए। दो-चार कारें ठुक जाएँ और वे घायल कारों को ढो कर ले जा सकें। कभी-कभी एक्सीडेंट ऐसी जगहों पर होते हैं जहाँ टो ट्रक नहीं होते। कुछ ही क्षणों में दो-तीन टो ट्रक दुर्घटना स्थल पर हाजिर हो जाते हैं। आपने नोट किया होगा, पहले टो ट्रक वाले आते हैं, फिर पुलिस आती है, फिर फायर ब्रिगेड वाले और अंत में एम्बुलेंस। सरकार को आपातकालीन सेवाएं सुधारना हो तो टो ट्रक वालों को प्राथमिक चिकित्सा में ट्रेंड कर देना चाहिए।

आपका कट मारने वालों से जरूर पाला पड़ा होगा। ये ज़्यादातर अविवाहित होते हैं। अपने ब्रेकअप का गुस्सा सड़क पर निकालते हैं, बेचारी सड़क कुछ बोलने से रही। इनके कट इतने खतरनाक होते हैं कि ये सड़क को मौत का कुँआ बना देते हैं। इनकी लहराती, बल खाती गाड़ियाँ इनके प्राण तो लेती ही हैं, बेचारे बेकसूर नागरिक भी चपेटे में आ जाते हैं।

हाईवे से एग्जिट लेने पर मुझे बहुत दुःख होता है। राजमार्ग छोड़ कर सड़क पर आ जाने का दर्द ड्रायवर ही जानते हैं। यहाँ पैदल यात्री आँख मींच कर सड़क पार करना चाहते हैं। वे चौराहों पर बने क्रॉस वाक तक जाना नहीं चाहते, वे सड़क पर से सीधे ही स्वर्ग जाना चाहते हैं। स्पीड लिमिट कम हो जाए तो मुझे उसकी चिंता नहीं है, पर चौराहे-चौराहे लगी पीली-लाल बत्तियाँ बड़ी देर बाद हरी होती हैं। आप मस्ती से जगजीत सिंह या अरिजीत को सुनते हुए जा रहे होते हैं कि पीली बत्ती चमकती है और लाल हो जाती है। आपको तब मालूम होता है कि पीला रंग बहुत जल्दी लाल हो जाता है। मैं लाल बत्तियों से हमेशा डरता रहा हूँ और अक्सर उन्हें क्रॉस करने के मूड में रहता हूँ। जिन चौराहों पर लाल बत्तियों के साथ कैमरे लगे होते हैं, वहाँ मेरी हवा निकल जाती है। आदमी के ऊपर टेक्नॉलॉजी चौकीदारी करने लग जाए तो आदमी को हारना ही पड़ता है।

अभी-अभी मुझे एक विस्फोटक ख्याल आया है। यदि सरकार मुझे ट्रांसपोर्टेशन मिनिस्टर बना दे तो मैं चौराहे-चौराहे और हाइवे पर सीसीटीवी कैमरे लगवा दूँ। लाखों गाड़ियाँ हाइवे पर रोज स्पीडिंग करती हैं और हजारों ड्रायवर लाल बत्ती फाँद जाते हैं। सबको टिकट भेजेंगे तो करोड़ों डॉलर रोज का नया रेवेन्यू मिलेगा। हमारी भावी पीढ़ियाँ तो सुरक्षित होंगी ही, हमारा हर सैकंड बढ़ता नेशनल डेट भी कम हो जाएगा।

ओ मानस के राजहंस

हे देव आप अतिथि हैं, तिथि की सूचना दिए बिना आये हैं, स्वागत। हमने देवता नहीं देखे तो क्या, आपकी सूरत से अलग भला देवता की सूरत क्या होगी! यहाँ अल्प निवास के दौरान आप प्रसन्न चित्त रहें और हमें भी खुश रखें, इसलिए कृपया निम्नलिखित बातों को अपने दिमाग में भर लें।

हे आदरणीय, कुछ पूर्व अतिथियों ने भोजन हेतु आसन ग्रहण करते हुए कहा कि वे कम मिर्ची का, बिना तला, सादा भोजन ग्रहण करेंगे। ऐसी विलम्बित सूचना से गृहस्थी का एक पहिया गुस्से में लाल-पीला और दूसरा पहिया अतिरिक्त बोझ से ढीला हो जाता है। इसलिए आप यथाशीघ्र ही भोजन संबंधी अपने राग-विरागों के बारे में सीधे ही गृहिणी को बता दें। वे मास्टर शेफ हैं, पूरी सावधानी से खाना बनाती हैं, बावजूद इसके भोजन में कंकर या बाल आ सकते हैं। ऐसे अप्रिय अवसरों पर आप अपने घर जैसा धैर्य बनाये रखें, कौर चुपचाप निगल लें या सिंक की शरण लें। बुद्धिमान की परीक्षा आपातकाल में होती है।

मेहमान को मान और मनुहार पूर्वक भोजन कराना हमारी परम्परा है, पर हम रूढ़िवादी नहीं हैं। आप धीरे-धीरे और चबा-चबा कर भोजन करें। बस ध्यान रखें कि आसपास डॉक्टर नहीं रहते। हे अवतारी, धुलने डाल देने से ही वस्त्र नहीं धुल जाते। मुए पड़ोसियों की वाशिंग मशीनें अक्सर खराब रहती हैं, इसलिए वस्त्र शीघ्र तैयार होने की प्रत्याशा नहीं रखें। आप समझदार हैं, पर आपके साथ जो छोटे-छोटे बाल देवता हैं वे नटखट हैं; कुपित भी जल्दी हो जाते हैं। उनके कोप से इस घर की वस्तुओं को बचायें। इस धूल भरे और बुजुर्ग लोगों के शहर में सौंदर्य प्रसाधन सामग्री की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, संस्कार और सौजन्यतावश हमने कुछ सामग्री दर्शनार्थ रखी है।

माननीय, आप आम आदमी के आत्मीय अतिथि हैं, राजसी अतिथि नहीं हैं। फिर भी, हमारा स्कूटर आपकी सेवा में तत्पर है। कभी वह रिजर्व में आकर पतित हो जाए तो पेट्रोल भरा कर उसे पावन कर दें। बड़ा ढीठ स्कूटर है, बिना ईंधन के दस मीटर चलने का मुलाहिजा भी नहीं पालता। इस शहर और इसके आसपास कोई दर्शनीय स्थल नहीं हैं। जिन्हें लोग दर्शनीय कहते हैं, उन्हें हम पूर्व में पधारे अतिथियों के साथ बीसियों बार देख चुके हैं। ये मोहनजोदड़ो से भी पहले के अवशेष हैं। बावजूद इसके आप गए तो आपके ही धन की बर्बादी होगी, मुझे मालूम है समय के मामले में आप बहुत अमीर हैं।

महरियों के बारे में क्या कहूँ, यह विश्वव्यापी समस्या है। तिस पर भी हमारी काम वाली बाई बड़बोली है, पार्ट टाइम में वेब टीवी चलाती है। इधर की उधर करना उसकी जरूरी आवश्यकता है, वह बड़ी किस्सागो है और तिल का ताड़ बनाने में उसे महारत हासिल है। कृपया उसकी आलोचना पर ध्यान न दें। मेहमानों को जल्दी विदा कराने में उसके स्वार्थ निहित हैं। हमारे कम्प्यूटर को भी इसी वक्त टें बोलना था, इसके साथ प्रिंटर, स्कैनर और कॉपियर भी शोक मग्न हैं, क्या करें यूनियनबाजी में सभी समानधर्मी लामबंद हो जाते हैं। फिर भी, वाईफाई उपलब्ध है, आप अपने फोन पर लगे रहें।

हे विशालहृदयी, आपने मासांत में अतिथि बन हमें उपकृत किया, इससे जाति-बिरादरी में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी है। मास का अंतिम सप्ताह है तो क्या, हम अपने अपनत्व में कोई कमी नहीं आने देंगे। अपनत्व के आगे भौतिक वस्तुओं की क्या बिसात। अपने मन को दुःखी न करें तथा अपने मित्रों और रिश्तेदारों में हमारा प्रशस्ति वाचन नहीं करें। भविष्य में आतिथ्य का सुअवसर दें तो हमें पूर्व सूचना अवश्य दें कि आप कब और कितने देवी-देवताओं के साथ यहाँ अवतरित होंगे। विश्वास रखें, पूर्व सूचना पाकर भी ये द्वार खुले रहेंगे।

आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। यह न समझें कि इसे हमने आपके लिए लिखा है। टोना-टोटका करने वाले एक पहुँचे हुए तांत्रिक ने ऐसा यंत्र लिख कर, इसे फ्रेम करा कर बैठक में टाँगने का निर्देश दिया है, ताकि हम आने वाले कष्टों से मुक्ति पा सकें। सो हमने ऐसा किया है, आगे आपकी और प्रभु की इच्छा।

खिसियानी बिल्ली जूता नोचे

भगवान किस रूप में कहाँ आते हैं, कब आते हैं और वहाँ क्या छोड़ जाते हैं, कौन जान सकता है! उनकी लीला आरपार है, वे ही जानें। दशरथ पुत्र भरत उनकी पादुकाएँ उठा लाए थे तो वे संसार सागर से तिर गए थे। बस इसी आशा में मैं नई चरण पादुकाएँ उठा लाता हूँ, और अपनी जीर्ण-शीर्ण पादुकाओं को वहाँ सेवानिवृत्त कर आता हूँ।

अब जो पादुकाएँ मिलती हैं वे काष्ठ की नहीं होतीं, चाम्र की होती हैं। वे भले अपवित्र हों पर चमकदार होती हैं। माल चमकदार हो तो उसकी पवित्रता कौन देखता है। भगवन् पादुकाओं को पॉलिश करवा-करवा कर इतना भव्य रखते हैं कि मेरी एक नजर उन पर पड़ती है तो फिर नहीं उठती। मैं अपने पाँवों में चरण पादुकाएँ धारण करने के बाद ही नजर उठा पाता हूँ, ताकि मैं यह सुनिश्चित कर सकूँ कि जो प्रसाद मैंने ग्रहण किया है, उस पर किसी और की नजर तो नहीं है। यदाकदा ही ऐसा होता है कि उन मनभावन पादुकाओं को और कोई क्लेम करने आता हो। पर कोई आ भी जाए तो मैं जी भर कर हँसता हूँ। कहता हूँ 'सॉरी सर'। धन्य हो अंग्रेज, हमें सॉरी कहना सिखा गए। अन्यथा ऐसे मौकों पर खिसियानी बिल्ली को जूता नोंचना पड़ता।

नई चरण पादुकाएँ पहन कर प्रभु निवास पर जाना मुझे नहीं सुहाता। पिछले सप्ताह जब अपने नए 'हश पपीज़' जूते पहन मैं प्रभु दर्शन को पहुँचा तो मैंने दायाँ जूता पूर्व दिशा में और बायाँ जूता पश्चिम दिशा में खोला। ताकि किसी दर्शनार्थी का मन नए जूते पर डोल भी जाए तो उसे दूसरा जूता सहज सुलभ नहीं हो। यद्यपि यह तरकीब काम कर गई, जूते यथास्थान ही रहे पर प्रभुदर्शन में मेरा

चित्त न लगा। बार-बार मेरा चित्त प्रवेश द्वार के पूर्व और पश्चिमी कोनों में भटकता रहा। प्रभु ने पूछा भी, वत्स क्या बात है आज तुम व्यथित हो, कुछ माँग नहीं रहे? मैं इतना ही कह पाया- प्रभु मेरे नए जूतों का ध्यान रखना। प्रभु हँस कर चले गए। मैंने मूर्खतावश ऐसा दुर्लभ अवसर जूतों की रक्षा में गवाँ दिया। तब मैं प्रभु से जूतों का भरा-पूरा स्टोर भी माँग लेता तो प्रभु तथास्तु कह देते। बाबा को जब यह वाकया बताया तो वे बहुत खिन्न हुए। उपदेश देने लगे, 'बेटे तुम्हें स्वर्ग मिल सकता था, तुम जूतों की रखवाली में यह जनम गवाँ आए मूर्ख।' अब कोई मैं अकेला मूर्ख तो हूँ नहीं जो जूतों के चक्कर में स्वर्ग गवाँ रहा हूँ। उस दिन के बाद से मैं कभी नए जूते पहन कर प्रभु दर्शन के लिए नहीं गया, न प्रभु वहाँ आए। प्रभु बड़े नटखट हैं, भक्तों की कैसी परीक्षा लेते हैं! नए जूतों में मन रमा था तो आशीर्वाद देने प्रकट हो गए। अब उनसे मिलने जाते-जाते जूते घिस गए हैं, वे प्रकट ही नहीं होते।

जूतों के चक्कर में मैंने प्रभु को खो दिया तब से जूतों से वितृष्णा हो गई है। अब घर से बिना जूते पहने प्रभुदर्शन को जाता हूँ। रुआँसा घर लौटता हूँ तो ध्यान कहीं और होता है। घर आ कर पता लगता है कि मैं नंगे पाँव गया था, ढँके पाँव आया हूँ। घर में समान नंबर के जूतों का स्टोर बन रहा है, सब प्रभु की माया है। प्रभु मैं तो पुण्य कमाने आ रहा था, जूते कमा रहा हूँ। बाबा पूछते हैं कितनी पनौती इकट्ठी करेगा? जिसे मैं प्रभु प्रसाद समझ रहा था वह पनौती कैसे हो गई?

आज लौट रहा था तो एक सज्जन ने पूछा, "बड़े अच्छे जूते हैं, कहाँ से खरीदे?"

'यहीं से लिए थे।'

'ये तो मेरे जूते हैं।'

'आप ले लीजिये।'

'फिर आप क्या करेंगे?'

'मैं खाली हाथ आया था, खाली पैर चला जाऊँगा।'

मैंने एक वाक्य में उन्हें सारा जीवन दर्शन समझा दिया।

नई चरण पादुकाओं ने मुझे हमेशा धर्म संकट में डाला है। मुझे याद है,

मेरे पाँवों में नए जूते थे, विवाह वेदी पर बैठने के लिए जूते खोलने थे। प्रियतमा वरमाला लिए खड़ी थीं पर मेरा सारा ध्यान जूतों पर ही था। जूते खोलूँ तो लूट जाऊँ, न खोलूँ तो कुआँरा रह जाऊँ। जूतों के चक्कर में सर्वप्रिय सलोनी सालियाँ खूँखार शेरनियाँ लग रही थीं। उनकी हँसी ने मेरे दिल को और उनकी तीखी निगाहों ने मेरे नए जूतों को छलनी-छलनी कर दिया था। मैंने सोचा भी दुल्हन को जाने दूँ, अपनी इज्जत, जूतों को बचा लूँ। भला हो बाबा का, मेरी दुविधा ताड़ गए और जूते उतरवा दिए। अन्यथा पहले भगवान गवाएँ थे, अब दुल्हन को गवाँ देता। जैसे ऑफिस में घुसते ही बॉस अपनी कुर्सी पर बिराज जाते हैं, घर में घुसते ही जूते अपना नियत स्थान सम्हाल लेते हैं। पहली फुरसत में आदमी उन्हें कीचड़-माटी रहित कर, पुनः पॉलिश से चमका देता है। मुख और मन मलिन हो तो कुछ नहीं, जूते और बाल चमचमाते रहना चाहिए।

हमारे गाँव और शहर के बीच एक नदी है। प्रभु की जटा से जितनी सिमटी गंगा निकलती है, उसकी धारा यहाँ वैसी ही पतली है। पर नदी का पाट सरकारी आश्वासनों जैसा चौड़ा है। गर्मी में जब पानी चाहिए नदी सूखी पड़ी होती है। झमाझम बारिश में जब चारों तरफ पानी ही पानी होता है, नदी भी पूरे आवेग में बहती है। बाढ़ में पुलिया बहा ले जाती है। ग्रामवासी अपनी चरण पादुकाएँ सिर पर रख या दिल से लगा कर नदी पार कर रहे होते हैं। तब भी आदमी को ख़ुद से ज़्यादा अपनी चरण पादुकाओं का ध्यान रहता है।

चरण अब पादुकाओं में बंद रहते हैं। आशीर्वाद की जरूरत में मैं बड़े-बूढ़ों के चरण स्पर्श करना चाहता हूँ तो उनकी पादुकाएँ ही दिखती हैं। आशीर्वाद की जगह जूते ही मिलते हैं। लगता है जूते मिलने की परम्परा हमारी संस्कृति से जुडी है। मेरे कवि मित्र बिना बुलाए ही कवि सम्मेलनों में नंगे पाँव जाते हैं। बिना मानदेय के जाते हैं और जब लौटते हैं तो जूतों की चार-छः जोड़ियाँ उपहार में ले कर आते हैं। उपहार का उपहास करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। उनका मानना है कि प्रसिद्ध व्यक्तियों को ही जूते पड़ते हैं। वे बताने लगे, "पत्रकार वार्ता में एक पत्रकार ने जॉर्ज बुश के ऊपर जूता दे मारा, पहला निशाना चूका तो उसने दूसरा जूता भी दे मारा। दो जूते पा कर अमेरिकन राष्ट्रपति जॉर्ज बुश दुनिया भर में इतने प्रसिद्ध हो गए कि कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता, राष्ट्रपति ट्रम्प

भी नहीं। पत्रकार की चर्चा तो कुछ महीनों में बंद हो गई पर जॉर्ज बुश जूते खाने के लिए अमर हो गए। याद रखें, जूते मारने वाले से जूते खाने वाला बड़ा होता है और उसे हमेशा याद रहता है कि उसे जूता पड़ा था।"

मुझे कवि मित्र की बात में दम लगा। दुनिया भर में लाखों व्यंग्यकार रोज ही तमाम विसंगतियों तथा कुप्रवृत्तियों पर तंज कसते हैं। देर रात तक कॉमेडी शोज चलाते हैं। लोग व्यंग्य को भी हँस कर टाल देते हैं, इन सबका कोई गंभीर नोटिस नहीं लेता। व्यंग्यकार ने शाब्दिक जूतों की बजाय भौतिक जूते चलाए होते तो दुनिया अलग हो सकती थी।

कुछ भी हो, इन दिनों फटे-पुराने जूतों की माँग बढ़ गई है, बड़े चुनाव आने वाले हैं। विरोधियों को जूते की माला पहना कर सम्मानित करने के लिए फटे-पुराने जूते ही चाहिए। नए जूतों से सम्मान को गरिमा नहीं मिलती।

क्या कहा आपने, आपके जूते नहीं मिल रहे। थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए, मैं आता हूँ।

असत्यमेव जयते

प्रधानमंत्रीजी ने शहडोल की जनसभा में जबर्दस्त भाषण दिया। यूँ तो उनका हर भाषण कालजयी होता है, पर यह भाषण सबका बाप था। उन्होंने कहा– 'पता चल गया है कि ये झूठ के कारोबारी, ये झूठ के शहंशाह, कितना झूठ बोल सकते हैं, कैसा–कैसा झूठ बोल सकते हैं, कहाँ–कहाँ झूठ बोल सकते हैं, शायद रात में भी बड़बड़ाते होंगे उसमें भी झूठ बोलते होंगे, ऐसी झूठ बोलने की आदत हो गई है।' बाइस सेकंड के इस क्लिप को मैंने इक्कीस बार सुना, तब कहीं याद हुआ। इरादा तो इसे एक सौ आठ बार सुनने का था ताकि धार्मिक पारायण का पुण्य मिल जाता पर इसी बीच चिंटू आ धमका।

– आप इसे बार–बार क्यों सुन रहे हैं?

– मोदी जी अपने बारे में खुलासा कर रहे हैं इसलिए।

– आप बुद्धू हैं, इसमें मोदी जी गाँधी जी के बारे में बोल रहे हैं।

– गाँधी जी तो सदा सच बोलते थे, ये क्लिप झूठ के बारे में है, पक्का मोदी जी अपने बारे में बोल रहे हैं।

– आप ठस हैं, यह कटाक्ष महात्मा गाँधी पर नहीं, पप्पू गाँधी पर है।

मैं वाद–विवाद के मूड में नहीं था। मैंने चिंटू से कहा– एक वाक्य में झूठ का आठ बार प्रयोग हुआ है, बताओ यह अनुप्रास अलंकार हुआ कि नहीं। मैं शास्त्रार्थ करने लगता हूँ तो चिंटू समझता है मैं व्यंग्य कर रहा हूँ। वह ऐसे कठिन प्रश्नों पर खीं–खीं कर कन्नी काट जाता है।

प्रधानमंत्री मोदीजी आल टाइम महानतम हैं। कथनी और करनी में

जितना अंतर होता है, आदमी उतना महान होता है। झूठ को सच की तरह फर्राटे से बोलने का ऐसा आत्मविश्वास बहुत कम महापुरुषों को नसीब होता है। दो करोड़ नई नौकरियाँ देने, अस्सी लाख करोड़ रुपयों का कालाधन विदेशों से वापस लाने, हर नागरिक के खाते में पंद्रह लाख रुपये जमा करने जैसे वादे कोई टटपुँजिया नेता नहीं कर सकता। उसके लिए कम से कम छप्पन इंच का सीना चाहिए। आज राजनीति में सफल होने की बुनियादी शर्त है, धूर्त होना, पाखंड रचना और बेसिर-पैर के झूठ बोलना। गडकरी जी ने सही कहा- 'हम तो यूँ ही लंबे-लंबे वादे कर रहे थे, लोगों ने सचमुच हमें सत्ता दे दी। हम भी क्या करें, हम हँस देते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।' लाजवाब संतुलन है, बड़ा नेता फेंके जा रहा है और छोटा नेता लपेट रहा है। राजनीति के अखाड़े में सच अब दलित-सा रह गया है, राजनीति के डीएनए में नब्बे प्रतिशत से अधिक सफेद झूठ बस गया है।

राजनेता समझते हैं कि वे जनता को उल्लू बना रहे हैं जबकि जनता उन्हें पहले से ही उल्लू समझती है। उल्लू, संसद में एक-दूसरे को उल्लू बना रहे हैं। जनता उनके मानव योनि से उल्लू योनि में बदलाव का मजा ले रही है। उसके पास बेहतर विकल्प यही है कि गधों की बजाय उल्लुओं को चुनें। झूठ सुन-सुन कर लोगों के कान पक गए हैं। झूठ का शोरगुल इतना है कि झूठ ही ज्यादा सच लगने लगा है। लगता है हमारे समाज, देश और दुनिया को न तो सत्य की जरूरत है और न ही सत्य के लिए यहाँ कोई जगह है। भारत के न्यायालयों, पुलिस थानों और मंत्रालयों में देश का बेरंगा प्रतीक चिह्न प्रमुखता से टंगा है, जिस पर लिखा है- सत्यमेव जयते। इन जगहों पर सत्य की विजय होगी इसमें हमेशा संदेह रहता है। न्यायालयों को पता है कि देश में दिन के उजाले में सौगंधपूर्वक सबसे अधिक झूठ कहाँ बोला जाता है। पुलिस का डंडा जानता है कि उसे किससे, कब सच बुलवाना है और सच में क्या बुलवाना है। सच बोलने की शपथ ले कर, लोग सच की ही सबसे ज़्यादा मिट्टी पलीद करते हैं।

आपने गौर किया हो तो सारे भारतीय नोटों पर अशोक चिह्न छपा होता है और उसके नीचे वेदों के जमाने का सद्वाक्य सत्यमेव जयते ठोक दिया जाता है। नोटबंदी के बाद नए नोट जारी करते हुए, छपाई की बहुत बड़ी भूल हो गई। इस सद्वाक्य को इक्कीसवीं सदी के अनुरूप संशोधित करने का इरादा था, लिखना

था– असत्यमेव जयते, रिजर्व बैंक ने इसे फिर गलत छाप दिया। अब भारत सरकार रिजर्व बैंक के पीछे पड़ी है कि ये सारा पैसा हमें दे दो।

चिंटू हर दस मिनट बाद आ कर चेक कर लेता है कि क्या मेरा लेख पूरा हो गया। उसे मेरी आलोचना करने का सुख जल्दी से जल्दी चाहिए। उसने लेख पढ़ कर कहा, सर जी राहुल–मोदी तो झूठ की छोटी मछलियाँ हैं। उनकी जगह ट्रम्प, पुतिन, शी जिनपिंग, किम जोंग किसी का भी नाम लिख दें, अमेरिका, रूस, चीन, उत्तर कोरिया आदि अन्य प्रमुख तालाबों में भी झूठ की काई बहुत फैल गई है। दुनिया भर में राजनीति की बुनियाद कभी कूटनीति होती थी, अब यह झूठनीति हो गई है, असत्यमेव जयते।

अब मेरे घर में देवता रहते हैं

मैं उठते ही टीवी को उठा देता हूँ। हालांकि उसके पहले मैं अपना दिमाग ऑन कर चुका होता हूँ, पर मेरा दिमाग उन्नीसवीं सदी का मॉडल है, धीरे-धीरे लोड होता है। लोड होते-होते झपकी मार लेता है और इसलिए सारे दिन पत्नी से उलाहने सुनता है। यह तो अच्छा है कि हमारा टीवी बड़ा संस्कारी है, ऑन-डिमांड मनोरंजन करता है। सवेरे संस्कृति रक्षक भजन सुनाता है, फिर संस्कृत में सुप्रभात कार्यक्रम देता है। संस्कृत भगवान और विद्वान आसानी से समझ लेते हैं। उन्हें निबटाने के बाद टीवी देसी हो जाता है, तब तक मैं भी निबट आता हूँ। यह मेरा नित्य कर्म है। आज संस्कृत उद्घोषिका ने धन्य कर दिया। उसने कहा- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:, जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता रहते हैं। क्या मालूम क्यों, मुझे लगता रहा कि मेरे घर में भूत रहते हैं। मैं जहाँ चीजें रखता हूँ वहाँ से गायब हो जाती हैं, कहीं और मिलती हैं। जेब में रखी चिल्लर यूँ ही रहती है, पर सारे नोट गायब हो जाते हैं।

इतने दिनों मुझे लगता रहा कि भूत को मेरा सेलफोन पसंद है या फिर सेलफोन को ही स्वत: चलने की बीमारी है। मैं उसे चार्जर पर लगा कर काम में लग जाता हूँ तो वह बिना चार्ज हुए कहीं और चला जाता है, कभी किचन में मिलता है तो कभी वाशिंग मशीन पर। कितना भुलककड़ हो गया हूँ मैं, जिन क्षेत्रों में मुझे नहीं जाना चाहिए वहाँ अपना सुराग छोड़ आता हूँ। मन नहीं मानता कि मैं भुलक्कड़ हो गया हूँ, सेलफोन की अफरातफरी में जरूर घरेलू भूत-प्रेतों का हाथ है।

बचपन में दादी ने समझाया था गंदे लोगों के पीछे भूत-प्रेत पड़ जाते हैं।

इस डर के मारे मैं रोज सवेरे नहा लेता था। अमेरिकनों को घर में ही भूत लग जाने का भय सताता है, इसलिए जब से मैं अमेरिका आया, रात को सोने से पहले नहाने लगा। धीरे-धीरे अनुभव हुआ कि विदेशों में इतने भूत-पिशाच नहीं रहते। मोक्ष भारत में मिलता है, इसलिए मोक्षप्रार्थी वहीं भटकते हैं। इस मामले में हिंदु-मुस्लिम विचारधारा समान है। भूत, जिन्न बन जाते हैं, अच्छा है जिन्ना नहीं बनते, नहीं तो आदमी के दो टुकड़े कर देते। भूत और जिन्न दोनों अपनी प्रजा को डरा कर रखते हैं। डर के मारे लोग पुण्य करने लग जाते हैं, डर के मारे लोग धर्म और मजहब की शरण तलाशते हैं। डरा कर नहीं रखो तो आदमी पुलिस और भगवान के आगे भी सिर नहीं झुकाता।

इच्छा तो बहुत रही कि जिंदा भूत-प्रेतों को देख आऊँ पर संसद की दर्शक दीर्घा का पास नहीं बटोर सका। द्वारपाल ने मुझे समझाया, अगले चुनाव परिणाम के बाद वे सभी इसी मार्ग से आएँगे; पाँच साल में एक बार शपथ लेने तो वे जरूर आते हैं नहीं तो उन्हें वेतन, भत्ता और पेंशन न मिले। तुम शपथ के दिन आ जाना। मैं अब चुनाव का इंतजार कर रहा था कि बस एक बार परिष्कृत भूत-प्रेत देख आऊँ।

भारतीय अनपढ़ हों या सुशिक्षित, वह भूत-प्रेत भगाने के नींबू-मिर्ची के टोने-टोटके जानता है, पर घर के भूत ढीठ होते हैं, सस्ते में नहीं भागते। मैंने भूत-प्रेत विशेषज्ञ चिकित्सक से मदद ली। वे मान्य पद्धति से करंट लगाते हैं और भूत-प्रेत हों या न हों उनसे मुक्ति दिला देते हैं। कभी सरकारी या गैर-सरकारी भूत पीछे पड़ जाएँ तो वे गुप्त दान करने की सलाह देते हैं। मेरी समस्या सुन कर उन्होंने कहा कि आदमी कवि बन जाए तो भूत-प्रेत उसे दूर से ही साष्टांग कर लेते हैं, छोटे भूत-प्रेतों में वरिष्ठों को सम्मान देने की परंपरा कायम है।

कवि ही कवि का ध्यान रखते हैं, फिर तुलसी तो ठहरे महाकवि। उनका कवित्त 'हनुमान चालीसा' जब टीवी पर आता है, मैं वॉल्यूम बढ़ा देता हूँ ताकि घर के किसी कोने में दुबकी या खुले आम घूमती बुरी आत्माएँ महाकवि के ऐलान का नोटिस ले सकें। स्वाभाविक जिज्ञासा हुई, तुलसीदासजी ने भूत-पिशाच कहाँ देखे होंगे। मुझे लगता है वे किसी कवि सम्मलेन में अध्यक्षता करने चले गए होंगे और वीर रस के कवि को कविता पाठ करते सुना होगा। ये कवि दहाड़े मारते हुए

ऐसा अद्भुत कविता पाठ करते हैं कि ऊँघ रहे सारे श्रोतागण तालियाँ ठोकने लग जाते हैं। तुलसीदासजी ने अन्यत्र भूत-पलित देखें हों ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिलता। मंदिरों में बहुतेरे जीवित रावण ही मिलते हैं, राम कहीं नहीं दिखते।

आज सवेरे नार्यस्तु वाला संस्कृत श्लोक सुनकर मुझे मतिभ्रम हो रहा था कि जब घर में देवता बसते हैं तो मुझे दिखते क्यों नहीं। मैं पितृसत्तात्मक संस्कृति में जन्मा इसलिए मैं इसका सम्मान करता आया। जो अयोग्य हो उसकी वाहवाही कर आप अपना मतलब निकाल सकते हो। ऐसा करके मैं खुद को बुद्धिमान मनवाता आया। मानने और मनवाने से पत्थर भी प्रभु हो जाते हैं, पर स्त्री विमर्श के इस कठिन दौर में अपने घर में मुझे भाव नहीं मिला। जो हकीकत जानते हैं वे भाव नहीं देते, धिक्कार देते हैं जैसे तुलसीदासजी को उनकी प्रिया रत्नावली ने धिक्कारा था। मेरे घर में मेरे पड़ोसियों, मित्रों और रिश्तेदारों, सबको अभयदान मिल चुका था, बस मेरे ही ज्ञान चक्षु नहीं खुल रहे थे। आज संस्कृत-उद्घोषिका मुझे परम ज्ञान दे गई। मैंने श्लोक में आए दो शब्दों यत्र और तत्र को बदल कर अपने घर का भाव भर दिया और अपनी सुप्रिया से कहा- अत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते अत्र देवताः। वह उमग रही है, मैं भी उमंगित हूँ, उसे पूजनीय बना कर मैं भी देवता बन गया हूँ।

परेड का आँखों देखा हाल

राजपथ जैसा राजमार्ग दुनिया में कहीं नहीं है। गणतंत्र दिवस के दिन तो यह मार्ग स्वर्ग की अप्सराओं और इंद्र को भी मात देता है। सारा देश सलामी दे रहा होता है। यहाँ देश की सुंदरता और साहस की झाँकियाँ निकलती हैं जो अभूतपूर्व सुख देती हैं। सड़क के इस ओर हम हैं, उस ओर प्रधानमंत्री तथा विदेशी मेहमान हैं। भारत से विदेश भागने की योजना बना रहे वीवीआयपी भी उधर ही हैं। झाँकी कलाकार जो हमारी तरफ हैं हाथ हिला रहे हैं, जो उनकी तरफ हैं उन्हें साष्टांग नमन कर रहे हैं। हमारी तरफ खड़े प्रेस वाले सरकार का कच्चा चिट्ठा खोल रहे हैं, उन्हें कुछ खोने का डर नहीं है, उन्हें सरकारी विज्ञापन नहीं मिलते। उस ओर खड़ा मीडिया हमारे समय की महानतम सरकार की यशोगाथा बखान रहा है। सड़क के इस ओर प्रजा है, उस ओर तंत्र है। जो सड़क के किसी ओर नहीं हैं और झाँकियों के पीछे भाग रहे हैं, वे अभी भी अपना मूल्य तलाश रहे हैं। उन्हें नहीं पता भागने से मूल्य नहीं मिलता, सरकारी खूंटे से जबरदस्ती जा कर बंध जाने से मूल्य मिलता है।

मैं असंतोषी जीव रह गया हूँ, जितना संतोष मिलता है खा-पी जाता हूँ और फिर सच बोलने लगता हूँ। हरे-भरे लोगों को सब हरा-भरा दिखता है, मेरे पास चश्मा नहीं है इसलिए सब सूखा-सूखा दिखता है। मेरी तरफ से राजपथ की झाँकियाँ कैसी दिखाई दे रही हैं, उसका आँखों देखा हाल आपको सुना रहा हूँ।

पहली झाँकी अर्ध नग्न जनजातियों की है। आदिम काल में सारी भूमि इनकी थी, इनके कबीले थे। जैसे-जैसे हम सभ्य होते गए, इनकी भूमि और धन हड़पते गए। हमारी शिक्षा पद्धति हमें शोषक बनना सिखाती रही। हमने इनको

बेदखल कर दिया और हथियाए माल को अपना बना लिया। आज ये अपनी झाँकी में अपनी परंपरा, नृत्य, संगीत आदि दिखा रहे हैं। आइए हम इनके लिए तालियाँ बजाएँ, हमारे पुरखों ने इनके पुरखों को लूटा और इन्हें हमारे मनोरंजन का साधन बना दिया।

दूसरी झाँकी किसानों की है। एक ट्रॉली पर बंजर भूमि को किसान हल-बक्खर से जोत रहे हैं, इससे जुड़ी ट्रॉली पर फसल लहलहा रही है जिसके चारों ओर सबका साथ, सबका विकास के बोर्ड मुख्यमंत्री के आदमकद फोटो के साथ लगे हैं। किसानों की ऐसी माली हालत देख कर लोग खुश हैं। हम सब जानते हैं, ये भाड़े के किसान हैं, आयोजक इन्हें मुस्कुराने और झंडा फहराने के लिए प्रथम श्रेणी के टीवी कलाकारों को देय फीस अदा कर रहे हैं। पास में खड़ा खबरखोजी टीवी वाला गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहा है, देखिए विकास के पट्ट के नीचे लाश पड़ी है, किसी किसान ने फिर आत्महत्या की है।

अगली झाँकी बिहार के लोकनर्तकों की है। गुजराती उन्हें डाँडियों से पीट रहे हैं। पार्श्व में खड़ी ठसाठस भरी ट्रेन काँप रही है। गोधरा स्टेशन पर हर ट्रेन थरथराने लगती है। गमछा लटकाए बिहारी लोकनर्तक जान हथेली पर ले कर इधर-उधर भाग रहे हैं, डिब्बे की छत पर चढ़ रहे हैं। उनके हाथ में सामान है, सिर पर सामान लदा है, काँख में बच्चा है। ट्रेन में लटकने की जगह नहीं है। उनके चेहरे से भय टपक रहा है, वे लोग अपने देश लौटना चाहते हैं। हमारी तरफ के लोग स्तब्ध हैं, सड़क के उस पार से सीटियाँ बज रही हैं, तालियाँ बज रही हैं, वे इस शानदार नृत्य का मजा ले रहे हैं और बिहारी अपना देश खोज रहे हैं।

अगली झाँकी जम्मू-कश्मीर के युवाओं की है। पार्श्व में डल झील है, शिकारे हैं, सुदूर पार्श्व में शालीमार के गुलाबी बाग हैं। एक ओर बन्दूकें तानें बख्तर बंद फौज खड़ी है। काली बंदर टोपियों में छुपे कुछ युवक उन पर पत्थर बरसा रहे हैं। फौज पानी के फव्वारे छोड़ रही है पर सड़कों पर खून बह रहा है। लोग कह रहे हैं, अदृश्य पड़ोसी पीठ में छुरा भौंक रहा है।

अगली झाँकी वायु सेना की है। इस शानदार झाँकी में पार्श्व में राफेल लड़ाकू विमान खड़ा है। एक बेचने वाला है, एक खरीदने वाला है, बीच में बिचौलिया है। विक्रेता छः सौ करोड़ में एक खिलौना बेच रहा है, खरीदने वाला

सोलह सौ करोड़ में खरीद रहा है। बिचौलिया एक खिलौना दिलाने के एक हजार करोड़ जेब में रख रहा है। छत्तीस खिलौनों की डील हो गयी है। सेना खुश है, उसे दस सालों के इंतजार के बाद खिलौने मिल रहे हैं। जनता खुश है कि देश ताकतवर बन रहा है। सरकार खुश है कि वह पार्टी कोष को मजबूत बना रही है। नामुराद विपक्षी नेता नाखुश हैं, इतने बड़े घोटाले में खुश होने की उन्हें कोई भूमिका नहीं मिली है।

यह थल सेना की झाँकी है। मुस्तैद युवा सैनिक शानदार प्रदर्शन कर रहे हैं। उनके पीछे तीस साल पुरानी बूढ़ी तोप चल रही है, इसका नाम है बोफोर्स। यह ऐतिहासिक तोप है, इसके बाद सेना ने तोपें लेना ही बंद कर दिया है। दलाली दलाल खाएँ और गालियाँ सेना सुनें! बोफोर्स ने दलाली के मानदंड स्थापित कर दिए हैं, इतना माल हो तो बिचौलिए हाथ डालें।

अगली झाँकी रिजर्व बैंक की है। बैंक नए-नए नोट छापे जा रही है और अर्थतंत्र की विशाल पाइप लाइन में डाले जा रही है। लोगों ने पाइपलाइन को कई जगह से तोड़ रखा है, वहाँ से ट्रॉलियाँ भर-भर कर वे स्वच्छ धन को अपने कोठारों में जमा कर रहे हैं। पाइपलाइन के अंतिम छोर पर जनता की विशाल लाइन लगी है, वहाँ थोड़ा-थोड़ा धन टपक रहा है।

यह गाँव के जन-स्वास्थ्य विभाग की झाँकी है। पार्श्व में शानदार सरकारी अस्पताल के अहाते में कर्मचारीगण धूप सेंक रहे हैं और गप्पें मार रहे हैं। डॉक्टरों के सरकारी आवासों के सामने मरीजों और उनके परिजनों की भीड़ लगी है। डॉक्टर द्रुतगति से घर आए मरीजों को निबटा रहे हैं। उनकी डस्टबिन नोटों से भर रही है। लोग कह रहे हैं, डॉक्टर साहब, आपका दिमाग घर पर ही रखा है, फीस ले लो पर घर पर ही देख लो। वे उन्हें अस्पताल जाने ही नहीं दे रहे।

अगली झाँकी भी गाँव से है। गाँव के स्कूल का दृश्य है, यहाँ सरकार दोपहर का भोजन देती है। दस-पंद्रह लड़के आये हैं पर उपस्थिति पत्रक पर पूरे दो सौ लड़के भोजन खाते हैं। जनतंत्र का प्राथमिक वोट बैंक इसी कमाई से बनता है। बच्चे बिना परीक्षा दिए साल-दर-साल पास हो जाते हैं। बुनियादी शाला से निकल कर कस्बे की स्कूल में पढ़ने ये ही दस-पंद्रह लड़के जाते हैं। शेष बच्चे देश की दौलत बन जाते हैं। वित्त मंत्री इन्हें एनपीए कहते हैं, नॉन प्रॉडक्टिव असेट।

कागजों पर साक्षरता उम्दा है, पर ग्रामीण बैंकों में बड़ी आबादी अँगूठे लगा रही है।

यह झाँकी बीएसएफ की महिला सैनिकों की है। यह भवानी टीम मोटर साइकलों पर हैरत अंगेज करतब दिखा रही है। दर्शक दंग है, अब सारा देश मीटू से बाहर निकल आया है। राजनेता माँग कर रहे हैं कि ऐसी सशक्त बॉर्डर सिक्युरिटी फोर्स को दिल्ली में तैनात कर देना चाहिए ताकि यहाँ आम लोग सुरक्षित महसूस करें। झाँकियाँ और भी हैं, सलामी लेने वाले थकने लगे हैं, वे खड़े-खड़े सो नहीं सकते, उनके लिए आराम कुर्सियाँ लगाई जा रही हैं। मेरी तरफ अचार-पराठों की जानलेवा गंध फैल रही है। भूख लगी हो तो झाँकियों का संदेश किसको समझना है। बाकी झाँकियों को भूख खा गयी है। जय हिंद।

देश के लिए एक टोटका करें

पकोड़े बेचते-बेचते अब मैं टोटका विशेषज्ञ बन गया हूँ। भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए लोग टोटका लेने आते हैं। पिछले सप्ताह नानूभाई आए और बोले प्रधानमंत्री बनने का टोटका बताओ। मैंने कहा- बहुत सरल है, हरिजन बस्ती में जाओ, हरिजन को दरी पर बिठाओ और आप जमीन पर बैठ जाओ। हरिजन के पाँव थाली में रखो और अच्छी तरह धोओ, फिर अपने गमछे से उसके पैर पोंछो। थाल में हरिजन का जो चरणामृत बना है उसकी एक बूंद अपने माथे पर लगाओ। प्रजातंत्र धन्य हो जाएगा। अपनी इस पूजा के वीडियो बनवाओ, फोटो बनवाओ और पूरे देश में प्रसारित कर दो। पत्थर पूजने से भगवान मिल जाते हैं, आप पतित को पूजेंगे तो आपका प्रधानमंत्री बनना तय है।

नानूभाई संकोच में पड़ गए, बोले हरिजन के पाँव कितने गंदे होंगे। उसका मोहल्ला स्वच्छ भारत अभियान का हिस्सा भी नहीं रहा होगा पर मैं प्रधानमंत्री बन कर ही देश की सेवा कर सकता हूँ, मैं यह टोटका अवश्य करूँगा। टोटके की तैयारी में राज्य के मुख्य सचिव ने हरिजन को एक सौ आठ बार स्नान करवाकर शुद्ध और सुगंधित करवा दिया। टोटके में सिर्फ उसके पाँव धोने थे, सरकार ने उसकी पूरी नस्ल धो दी। जिला कलेक्टर ने हरिजन मोहल्ले को चकाचक कर साबरमती आश्रम जैसा बना दिया। नानूभाई आए, अपने विमान में चालीस मीडिया कर्मियों को मुफ्त में बिठा लाए और हरिजन की चरण पूजा का टोटका पूरी श्रद्धा से किया। हमारे महान देश को अपनी परंपरा पर गर्व होना चाहिए कि हरिजन का चरणामृत कम पड़ गया। मस्तक पर हरिजल लगाते हुए नानूभाई एंड पार्टी के फोटो शूट सारे देश में वायरल हो गए।

नानूभाई गए तो राजूभाई दौड़े-दौड़े आए, बोले मुझे भी टोटका बताओ, मुझे ही प्रधानमंत्री बनना है। मैं असमंजस में पड़ गया। मैंने कहा- राजूभाई प्रधानमंत्री वाला टोटका तो गया, आपको भावी प्रधानमंत्री बनने का टोटका दे सकता हूँ। उन्होंने आँख मारी और सहमत हो गए। मैंने कहा आप किसी गरीब की झोपड़ी पर जाइए और उसके साथ बैठकर सूखी रोटी खाइए, फिर वहीं खाट लगवा कर सो जाइए। मेरे मुँह पर देखने जैसा कुछ नहीं था पर वे मुझे घूरने लगे और बोले मैं खानदानी ब्राह्मण हूँ, जरूर भिक्षा ग्रहण करूँगा। वे पूरे लाव-लश्कर के साथ गए, उनके मैनेजमेंट ने ऐसी व्यवस्था की कि गरीबपूरा का झोपड़ा तुगलकगंज में बदल गया। मुझे खुशी है कि उन्होंने टोटका पूरा किया, भगवान उनकी मनोकामना पूरी करे।

मैं आधुनिक टोने-टोटके ही बताता हूँ। परंपरा से चले आ रहे लाल मिर्च और नींबू के टोटके देख कर ही लोगों को लग जाता है कि किसी ने यह टोटका किया है। वे सतर्क हो जाते हैं और नींबू से एक मीटर दूर होकर निकल जाते हैं। ऐसे में टोटका काम नहीं करता। टोटका प्रजातंत्र जैसा होना चाहिए कि किसी को भी मालूम नहीं हो कि यह टोटका है।

कुछ महीनों पहले कालूभाई आए थे, वे बेरोजगार थे। बोले काम चाहिए, मुझे बस दस्तख़त करना आता है, मुख्यमंत्री का काम मिल जाए ऐसा कुछ टोटका बता दो। मैं सोचने लगा, लोकतंत्र का स्तर उँचा उठ गया है। अंगूठा टेक की जगह दस्तखत करने वाला मुख्यमंत्री मिल रहा है। मैंने सुझाया, कालूभाई आपको सार्वजनिक जीवन में आना है तो सार्वजनिक संडास वाला टोटका एकदम मुफीद रहेगा। उनके मुरझाए चेहरे पर चमक आ गई, जोश से बोले मैं जरूर करूँगा। अपने-अपने मोबाइल को रिचार्ज कर उनके साथ सैकड़ों लोग जुड़ गए। उन्होंने बस स्टैंड के शौचालय को चमका-चमका कर ताजमहल जैसा दर्शनीय स्थल बना दिया। कालूभाई ने अपने जीवन की सर्वाधिक सेल्फियाँ खिंचवाने का वहाँ रिकॉर्ड बनाया। उन्हें लाजवाब प्रसिद्धि मिली। संडास साफ कर वे राजभवन साफ करने चले गए। जैसा टोटका कालूभाई को फलीभूत हुआ वैसा सबको फले।

कल शाम को बैंड-बाजे के साथ जो सज्जन आए थे वह दूल्हा नहीं थे। एक पार्टी ने उन्हें टिकट दे दिया था तो वे अपनी बारात निकलवा रहे थे। आते ही

चरण छूकर उन्होंने कहा, सांसद बनना है कोई टोटका दो। अपना क्या है, जो माँगे उसे दे देते हैं। उन्हें टोटका दिया कि जनयात्रा करते समय कहीं कोई गरीब–गुरबा बाई बर्तन माँज रही हो तो उसके बर्तन माँज देना। आज के अख़बार का मुखपृष्ठ उनके फोटो से भरा है। कामवाली बाई ना–नुकुर कर रही है पर वे उसके हाथ से बर्तन छीनकर चमका रहे हैं। मोहल्ले के आठ–दस घरों के बर्तन सफाई के लिए ओटले पर रखे हैं। वे आज सबके बर्तन धोने वाले हैं, सांसद बनकर वे देश को धो डालेंगे। अब फीता काटने और शिलान्यास करने का गोरखधंधा जनता समझने लगी है, अब नए तरीकों से वोटरों के दिलों में सीधी घुसपैठ करना जरूरी हो गया है। क्या कहा, आपको भी टोटका चाहिए। जी जरूर, आप वोट देने जाएँ और मतदान केंद्र से अपनी उँगली की फोटो जरूर शेयर करें, लोकतंत्र को अमर रखने के लिए आप इतना तो कर ही सकते हैं।

चंद्रयान-3 से भारत

जी, आप नेशनल टीवी के सीधे प्रसारण में मुझे ही देख रहे हैं। मैं चंद्रमा पर उतरने वाला हूँ। यह चंद्रयान-3 मिशन है। हम चंद्रमा के उस विशाल गड्ढे में उतरने वाले हैं जहाँ तक दुनिया का कोई व्यंग्यकार नहीं उतरा। जी आपने सही समझा, हिंदी के व्यंग्यकार को अंग्रेजी में एस्ट्रोनॉट कहते हैं। जरा रूकें, हमारे प्रधानमंत्रीजी का फोन आ रहा है।

प्रधानमंत्री – चाँद के इस अज्ञात गड्ढे में उतरने के लिए डेढ़ सौ करोड़ भारतवासियों की ओर से मैं आपको बधाई देता हूँ। बताइए चाँद से आपको भारत कैसा लग रहा है।

मैं – सारे जहां से अच्छा हिंदोस्ता हमारा।

प्रधानमंत्री – हाँ, हिंदूस्थान हमारा। विस्तार से बताइए भारत भूमि कैसी लगती है वहाँ से।

मैं – इंक्रेडिबल इंडिया, अतुल्य भारत। सारा देश हरा-भरा लग रहा है।

प्रधानमंत्री – हरा-हरा! नहीं, नहीं, आपको गलत दिख रहा है। सारा देश केसरिया-केसरिया दिखना चाहिए।

मैं – सर हमारे खेत फसलों से भरे हैं, इसलिए हरे-हरे हैं।

प्रधानमंत्री – ना, ना। सब्सिडी हम देते हैं, किसान सम्मान निधि हम देते हैं, सब कुछ हम देते हैं फिर फसलों का रंग हरा क्यों, फसलों का रंग केसरिया होना चाहिए। हमारे वैज्ञानिक चंद्रयान-3 बना सकते हैं तो वे फसलों का रंग भी केसरिया कर सकते हैं। चलिए, हम यह बात उनसे करेंगे, आप तो हमारी

टेक्नोलॉजी के बारे में देश को बताइए।

मैं – चंद्रयान की टेक्नोलॉजी रूस और अमेरिका को भी मात देती है सर। क्या साफ दिखता है, बारीक से बारीक दिखता है सर।

प्रधानमंत्री (उत्साहित होकर) – बताइए, बताइए।

मैं – सर पिछले महीने के टेप में बिहार का अस्पताल देखिये। बच्चे गलियारे में और मैदान में भरे पड़े हैं। डॉक्टर चमकी बुखार-बुखार चिल्ला रहे हैं। सर वहाँ न दवाइयाँ हैं, न बिस्तर हैं, पीने के लिए साफ पानी भी नहीं है। सर, सैकड़ों बच्चों की लाशें जमा हो गई हैं, सर आप कहें तो गिन कर बतायें, हमारी टेक्नोलॉजी बहुत तेज है सर।

प्रधानमंत्री – बिहार छोड़िए, वहाँ का मुखिया अपना नहीं है। यूपी दिखता है क्या?

मैं – जी साफ-साफ दिखता है, पिछले दिनों के ही फोटो स्क्रीन पर हैं। लेटेस्ट टेक्नोलाजी का कमाल है सर जी। नंबर प्लेट पर कालिख पुता हुआ ट्रक दौड़ता आ रहा है, गलत लेन में लहराता जा रहा है। उसने सामने से आती कार को टक्कर मार दी, जिसमें भारत की एक बेटी बैठी थी, उसके साथ किसी विधायक ने दो साल पहले रेप किया था सर। पीछे बैठे गवाहों को मरा हुआ निकाल लिया गया है सर, रेप-पीड़िता का वकील और रेप-पीड़िता की हालत गंभीर है। हमारे वैज्ञानिक और उनकी टेक्नोलॉजी बेमिसाल है सर, सूक्ष्म से सूक्ष्म डिटेल मिलते हैं सर।

प्रधानमंत्री – बस यह नालायक पुलिस, विपक्षियों से मिली हुई है। हमारी महान संस्कृति को विपक्षियों ने बर्बाद कर दिया है। हमें विपक्ष मुक्त भारत चाहिए। अभी ताजा खबर क्या है?

मैं – तीन साल की बच्ची से वहशियों ने रेप करके उसका गला काट कर कहीं फेंक दिया है सर। बाकी शरीर कूड़े के ढेर में मिला है सर।

प्रधानमंत्री – बस करो, वैज्ञानिकों ने नेगेटिव प्रोग्रामिंग ज्यादा कर दी है। कुछ अच्छा है तुम्हारे पास बताने को? हमने काले धन पर सर्जिकल स्ट्राइक की थी, उसका ताजा हाल बता सकते हो क्या?

मैं – हाँ सर, पाँच सेकंड दीजिए, देश के चप्पे-चप्पे पर निगरानी कर रहे सेटेलाइट चंद्रयान से जुड़े हैं। हमारे पास सुपर-डुपर कम्प्यूटर हैं, लीजिए रिपोर्ट हाजिर है। देश की निन्यानबे प्रतिशत जनता के पास काला धन नहीं है सर। कुछ राजनेताओं के पास हजारों करोड़ का कालाधन दिख रहा है, सर कुछ बड़े अधिकारियों और उद्योगपतियों के नाम भी लुप-झुप हो रहे हैं।

प्रधानमंत्री – यह लिस्ट मेरे दो नंबर को भेज दो। पाँच राज्यों में अगला चुनाव जीतना है। तुम जाओ, उतरो अब चांद के गड्ढे में, मैं देश को बधाई दे देता हूँ चंद्रयान-3 के सफल मिशन के बारे में। जय हिंद।

■■



धर्मपाल महेन्द्र जैन

1512-17 Anndale Drive
Toronto M2N2W7, Canada
+ 416 225 2415
dharmtoronto@gmail.com

जन्म : 1952

स्थान : रानापुर, **कर्मभूमि**- मेघनगर, जिला-झाबुआ, (म.प्र.)

निवास : टोरंटो (कनाडा)

शिक्षा : भौतिकी; हिन्दी एवं अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर

प्रकाशन : पाँच सौ से भी अधिक कविताएँ व हास्य-व्यंग्य प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, आकाशवाणी से प्रसारित। 'सर क्यों दाँत फाड़ रहा है?' (व्यंग्य संकलन) एवं 'इस समय तक' (कविता संग्रह)

संपादन : स्वदेश दैनिक (इन्दौर) में 1972 में संपादन मंडल में, 1976-1979 में शाश्वत धर्म मासिक में प्रबंध संपादक।

संप्रति : सेवानिवृत्त, स्वतंत्र लेखन। दीपट्रांस में कार्यपालक। पूर्व में बैंक ऑफ इंडिया, न्यूयॉर्क में सहायक उपाध्यक्ष एवं उनकी कई भारतीय शाखाओं में प्रबंधक।

स्वयंसेवा : जैना, जैन सोसायटी ऑफ टोरंटो व कैनेडा की मिनिस्ट्री ऑफ करेक्शंस के तहत आयएफसी में पूर्व निदेशक। न्यूयॉर्क में सेवाकाल के दौरान भारतीय कौंसलावास की राजभाषा समिति और परमानेंट मिशन ऑफ इंडिया की सांस्कृतिक समिति में सदस्य। तत्कालीन इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स में परीक्षक।





ISO 9001 : 2015 प्रकाशक का उद्यम

www.kitabganj.com
SATIRE
ISBN 978-93-89352-64-1
HARDCOVER ₹ 500

किताबगंज प्रकाशन के लिए
आवरण चित्र साभार : तथास्तु

www.kitabganj.com
SATIRE
ISBN 978-93-89352-63-4
PAPERBACK ₹ 250